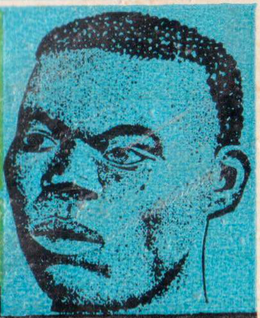
भारत सरकार शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा स्वीकृत







मानव एक : रंग रूप अनेक

रॉबिन क्लार्क







प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में विभिन्न प्रकार का ज्ञानवर्धक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार द्वारा पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के तत्वावधान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन की योजना सन् 1961 से चल रही है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अद्यतन ज्ञान-विज्ञान का जन सामान्य में प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता तथा मानवता का उद्बोधन एवं हिन्दीतर भाषाओं के साहित्य को रोचक और सरल हिन्दी भाषा में सुलभ कराना है। इन पुस्तकों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उपयोग किया जाता है और योजना की पुस्तकें अधिक से अधिक पाठकों को सुलभ हो सकें, इस विचार से इनका विक्रय मूल्य कम रखा जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'मानव एक : रंगरूप अनेक' श्री राबिन क्लार्क की अंग्रेजी पुस्तक 'डाइवर्सिटी आफ मैन' का हिन्दी अनुवाद है जिससे मानव प्रजातीय विभेदों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेखक की मान्यता है कि एक ही जाति-वर्ग के मनुष्यों में अनेक पारस्परिक समानताएँ पाई जाती हैं परन्तु व्यक्ति-व्यक्ति का अन्तर इतना सूक्ष्म है कि उसे केवल मानव-विज्ञानियों द्वारा विकसित तकनीक के माध्यम से ही समझा जा सकता है। आशा है यह पुस्तक मानव-विज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
नई दिल्ली

हरबंस लाल शर्मा
अध्यक्ष

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा-विभाग) भारत सरकार द्वारा स्वीकृत

मानव एक रंग रूप अनेक

रॉबिन क्लार्क



अलंकार प्रकाशन
666, भील, दिल्ली-110051

य हिन्दी निदेशालय (शिक्षा-मंत्रालय) भारत सरकार के सहयोग से
ान्वित 'लोकप्रिय पुस्तकों की प्रकाशन-योजना' के अंतर्गत स्वीकृत एवं
पटल बुक हाउस दिल्ली के निमित्त अलंकार प्रकाशन से प्रकाशित

संपादन एवं संयोजन: डॉ० मेघराज शर्मा
अनुवादक : वन्दना
पुनरीक्षक : डॉ० एच० एस० बिश्नोई

मूल्य
तीस रुपये (30.00)
संस्करण
दूसरा : 1989
प्रकाशक
अलंकार प्रकाशन
666, झील, दिल्ली-110051



कोई भी दो व्यक्ति बिल्कुल एक समान नहीं होते, फिर भी हर किसी एक जाति के विभिन्न सदस्यों में अनेक लक्षण समान रूप से पाये जाते हैं। मगर अलग-अलग जातियों के बीच अनेक शारीरिक अन्तर पाये जाते हैं—जैसे कि गोरे बालों वाले गोरे स्कॅंडिनेवियन (ऊपर दाहिनी ओर) से लेकर दूसरी ओर लगभग पूरी तरह काले बालों और काली खाल वाले नीग्रो तक (बायीं ओर)। इन दोनों के बीच लाल और पीली तथा भूरी खाल वाली जातियां आती हैं जैसे कि मद्रास का रहने वाला भारतीय (नीचे बायीं ओर) तथा उत्तर अमरीकी रेड इण्डियन (दाहिनी ओर)।

विषय-सूची

चित्र-सूची

फोटो चित्र

मूलपाठ-चित्र

1. बहुरंगी मानव

शायद हमें कभी न पता चल सके कि पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ कैसे हुआ। लेकिन जैसे भी हुआ हो, इतना तो निश्चित है ही कि शुरू-शुरू में जो भी जीव बने वे बहुत ही सरल, एक कोशिका वाले जलीय जीव थे। इन कण के समान जीवों से लेकर होमो सेपियन्स (Homo sapiens) नामक आज के बेजोड़ और जटिल मानव तक के विकास होने में लाखों-करोड़ों वर्ष लगे और इस विकास-क्रम में न जाने कितने ही उतार-चढ़ाव भी आए। समूचे जीव-जगत् का विकास एक ऐसे विशाल वृक्ष के समान कहा जा सकता है जिसमें अलग-अलग शाखाओं और उपशाखाओं पर अलग-अलग प्रकार के जीव-जंतु उत्पन्न होते गए—इस विकास-वृक्ष की कहानी बड़ी ही दिलचस्प है। और, इस विकास में चोटी पर बैठा जो सबसे जटिल प्राणी, यानी मानव, बना—उसकी कहानी भी उतनी ही रोचक है। ऐसा क्यों? इसलिए क्योंकि मानव के रूप में हुआ विकास सफल रहा है—यह मानव सारी दुनिया में फैल चुका है और वह भी इक्का-दुक्का नहीं बल्कि भरपूर आबादियों के रूप में।

मनुष्य सचमुच बेजोड़ है। उसने अपने कुशल हाथों की करामात से अपने वातावरण पर विजय पा ली है। उसने भाषा का विकास किया जिससे वह विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है। भाषा का नतीजा यह हुआ है कि मनुष्य का ज्ञान जुड़ता-बढ़ता जाता है—यानी जो कुछ एक पीढ़ी सीखती है वह उसे भाषा के द्वारा दूसरी पीढ़ी को दे सकती है। मनुष्य के बड़े और अधिक विकसित मस्तिष्क ने उसे अपने चारों तरफ़ के संसार को समझ-बूझकर उसी संसार की एक मानसिक तसवीर खींच सकने की शक्ति दी है। हाँ, यह बात दूसरी है कि यह तसवीर आज भी काफ़ी अधूरी है—यूँ कहें कि बस पेंसिल से बनाया हुआ एक कच्चा खाका है। फिर भी, उसने इस विश्व के क़रीब-क़रीब हर पहलू की खोजबीन की है जिनमें परमाणु एवं इलेक्ट्रॉन से लेकर सितारे एवं आकाशगंगाएँ तक शामिल हैं। कदाचित् दुनिया का कोई भी अन्य प्राणी इतना जिज्ञासु नहीं है जितना कि मानव। निश्चय ही किसी भी अन्य प्राणी को उसे घेरे रखने वाली अपनी असंख्य समस्याओं को समझने-खोजने में उतनी सफलता नहीं मिली है जितनी कि मानव को। दो शब्द 'क्यों' और 'कसे' हर समय उसकी जबान पर रहते हैं।

मनुष्य ने उस एक अजीब चीज को भी जन्म दिया है जिसे वह 'सभ्यता' कहता है। अपने सबसे प्रारम्भिक दिनों से ही उसने अपनी गुफ़ाओं में चित्रकारी की

है, उसने संगीत बनाया है, और वह कहानियाँ सुनाता रहा है। यह बात दूसरी है कि संसार के कोई भी दो व्यक्ति इन चीजों को ठीक एक ही-सी तरह नहीं करते हैं—फिर भी, जो कुछ अन्तिम कृति बन पाती है उस पर समय और समाज या घटनाओं का गहरा असर पड़ा होता है। उदाहरण के लिए, संगीत को ही ले लीजिए। इंगलैंड के पन्द्रहवीं शताब्दी के संगीत में एक विशेष लक्षण था हालांकि हर एक अलग-अलग संगीत-रचना बिल्कुल भिन्न होती थी। यही बात इटली के पुनर्जागरण काल के चित्रकारों पर भी लागू होती है, और इसी तरह अरब आदि देशों के आदितम कुम्भकारों पर भी। अगर आप किसी पुराने मिट्टी के बर्तन के टुकड़े को किसी पुरातत्ववेत्ता को दें तो शायद वह यह ठीक-ठीक बता देगा कि यह बर्तन का टुकड़ा कब और कहाँ बनाया गया था—हालांकि कोई भी दो बर्तन बिल्कुल एक-से नहीं होते। संक्षेप में, यही कहना काफ़ी है कि मानव-सभ्यता का निर्माण केवल मनुष्य के व्यक्तित्व से ही नहीं हुआ वरन् विशिष्ट स्थान और विशिष्ट समय के उसके समाज द्वारा भी हुआ है।

शारीरिक दृष्टि से भी मानव में लगभग इसी प्रकार की भिन्नता पाई जाती है जैसी कि सभ्यता में। दुनिया के कोई भी दो व्यक्ति, बशर्ते कि वे समान जुड़वाँ भाई या बहन न हों, बिल्कुल एक जैसी शक्ल के नहीं होते। फिर भी आप देखेंगे कि सभी जापानियों में कुछ पारस्परिक समानता तो है ही—और इसी तरह भारतीयों, बर्मा-वासियों, चीनियों, या संसार के किसी भी अन्य देश के रहने वालों में इसी प्रकार की कुछ-न-कुछ समानता तो होती ही है। किसी एक विशिष्ट क्षेत्र के भीतर किसी एक विशेष काल में वहाँ के रहने वालों में कुछ मूलभूत समानताएँ ज़रूर होती हैं, हालांकि वहाँ का हर इन्सान दूसरे इन्सान से कुछ-न-कुछ तो भिन्न होता ही है। इस तथ्य से उन लोगों को बड़ी ही कठिनाई हुई है जिन्होंने मनुष्य को एकदम पृथक्-पृथक् जातियों में विभाजित करने का प्रयत्न किया है—और सच तो यह है कि वे लोग अपने इस प्रयत्न में कभी भी पूरी तरह सफल नहीं हुए। अगर आप किसी प्रिज़्म से छितराए हुए इन्द्रधनुषी रंगों को तीन वर्गों में रखें—लाल, पीला और नीला—तब आपको यह कहना बहुत ही कठिन होगा कि कहाँ पर लाल समाप्त होकर पीला शुरू होता है और कहाँ पर पीला समाप्त होकर नीला शुरू होता है। इसी तरह मनुष्य को भी अलग-अलग वर्गों में बाँटना मुश्किल है, क्योंकि उसमें भी शारीरिक भेदों की एक पूरी शृंखला मिलती है। मनुष्य में हर तरह का अन्तर क्रम मिलेगा, चाहे वह नूएर प्रजातियों की काली-कलूटी खाल से लेकर स्कैंडिनेवियावासी की गोरी चमड़ी तक हो, या फिर किसी चीनवासी के मोटे-झोटे लंबे बाल से लेकर अफ्रीकी नीग्रो के बारीक, छोटे, ऐंठे हुए बाल तक हो।

इस प्रकार के अन्तर केवल बाल और खाल में ही हों, ऐसी बात नहीं। मनुष्य में और भी बहुत सारे अन्तर पाए जाते हैं जिन्हें बिना माइक्रोस्कोप के नहीं देखा जा सकता। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अन्तर मनुष्य के रक्त में पाए जाने वाले भिन्न-भिन्न

पदार्थों के रूप में होते हैं, और इनमें भी वे अन्तर तो बहुत ही प्रमुख हैं जो रक्त के सबसे महत्वपूर्ण रचक लाल हीमोग्लोबिन में पाए जाते हैं—वही लाल हीमोग्लोबिन जो फेफड़ों में ऑक्सीजन को सोखकर शेष शरीर में पहुँचाता है। और भी बहुत से अन्तर हैं जसे कि दाँतों में, हथेली की उल्टी तरफ़ हाथों पर बालों के होने में, खोपड़ी की आकृति में, आदि। लेकिन इन अन्तरों को प्रायः जातीय विभिन्नताओं के रूप में नहीं देखा जाता। मगर कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मानव-मानव में पाए जाने वाले अन्तर बस चमड़ी तक के हैं, भीतर तो वह बिल्कुल एक-सा है। उनका इस तरह कहना सही नहीं है, भले ही वे लोग जातीय समानता को बढ़ावा देने के लिए ऐसा कहते हों। दो प्रजातियों के बीच सौ से भी अधिक सूक्ष्म विभेद पाए जा सकते हैं, और नई-नई खोजों के आधार पर अधिकाधिक विभेद पता लगते जा रहे हैं।

प्रजातीय विभेदों का अध्ययन शारीरिक मानव-विज्ञान का भाग है किन्तु मानव-विज्ञानियों को कई अन्य विज्ञानों की जानकारी भी जरूरी है जैसे कि शरीर-रचना, आनुवंशिकी, जीवित वस्तुओं का रसायन (जिसे जीव-रसायन कहते हैं), भौतिकी आदि—क्योंकि जैसा कि हम देखेंगे मानव-विज्ञानियों द्वारा अपनाई गई बहुत सी तकनीकें भौतिकीविदों ने अपनी प्रयोगशालाओं में विकसित की हैं।

अगले अध्याय में मैं त्वचा के रंग के बारे में चर्चा करूंगा—यह रंग कैसे पैदा होता है, इसे कैसे मापा जाता है, इसका क्या लाभ है, और किन लोगों में कौन-सा रंग पाया जाता है। सबसे पहले खाल के रंग को मैंने इसलिए नहीं चुना कि यह सबसे महत्व का अन्तर है बल्कि इसलिए कि यह जातियों के बीच पाया जाने वाला एक सबसे स्पष्ट अन्तर है।

2. खाल के धूप के चश्मे

हज़ारों-हज़ारों वर्ष पूर्व जब मनुष्य पहले-पहल पृथ्वी पर प्रकट हुआ, उस समय की जानकारी विज्ञान की सहायता लिए बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। जिस तरह खगोल-विज्ञानी बिना टेलीस्कोप के अपनी कोरी आँखों से इस विश्व का केवल एक सूक्ष्म अंश ही देख पाता है उसी प्रकार मानव-विज्ञानी भौतिकी और भू-विज्ञान जैसे विज्ञानों की सहायता के बिना कोई विशेष अर्थपूर्ण खोज नहीं कर सकता। लेकिन अब इन विज्ञानों की सहायता के द्वारा पूर्व-इतिहास की गहरी धुंध अनेक स्थानों पर हट चुकी है और पृथ्वी पर आदितम मानव के जीवन की झांकियां मानव-विज्ञानियों के सामने नज़र आने लगी हैं।

मानव कहे जा सकने वाले पहले लोगों का समूह कदाचित् 1,00,000 साल पहले प्रकट हुआ, और उसके प्रकट होने का स्थान उष्णकटिबंधों में पाई जाने वाली कोई जगह थी। मानव कहे जा सकने वाले इस प्राणी के उत्पन्न होने में करोड़ों वर्ष लगे, किन्तु एक बार प्रकट हो चुकने के बाद उसका विकास बहुत तेज़ी से हुआ। ऐसा इसलिए क्योंकि मानव पृथ्वी पर एक सफल प्राणी था। वह फूलता-फलता गया। उसकी आबादी दिन-दूनी रात-चौगनी बढ़ी। और वह अपने विकास-स्थल से दूर-दूर तक फैलता गया। वह अफ्रीका और एशिया में फैला, और फिर यूरोप में भी फैला। बाद में एक थल-सेतु से पार करते हुए वह एशिया से चलकर अमरीका पहुँचा, यह थल सेतु आज बेरिंग जलडमरुमध्य बना हुआ है। और अभी बहुत समय नहीं बीता है कि यह अति विशेष मानव-विस्तार दुनिया के हर कोने में पहुँच चुका है।

लेकिन जैसे-जैसे मानव फैलता गया वैसे-वैसे उसे बहुत भिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा—उन परिस्थितियों से भिन्न जिनके लिए वह उष्णकटिबंध में रहने का आदी हो चुका था और इस तरह विकास की प्रक्रिया जारी रही। धीरे-धीरे मनुष्य के कुछ लक्षण बदले जिनसे वह अपने नए-नए परिवेशों में रहने के लिए उपयुक्त होता गया। ऐसा होने में हज़ारों-हज़ारों साल लगे—लेकिन जो भी हुआ वह अच्छी और पूरी तरह हुआ। पृष्ठ 20 के सामने का फ़ोटो-चित्र (प्लेट 1) देखिए। इसमें आपको वह विशाल अन्तर दिखाई देगा जो उत्तर ध्रुव एवं विषुवत् रेखा पर रहने वाले व्यक्तियों के स्वरूप में पाया जाता है। इतना ही अन्तर गर्म शुष्क मरुस्थलों के निवासियों और यूरोप जैसे शीतोष्ण प्रदेशों के निवासियों में पाया जाता है।

तो प्रश्न उठता है कि वे कौनसे शारीरिक परिवर्तन थे जिनके द्वारा मनुष्य

अपने नए परिवेश के लिए अनुकूल हो गया ? सबसे ज्यादा असाधारण अन्तर खाल के रंग में आया। आज के सबसे अधिक काले लोग अफ्रीकी नीग्रो हैं (जैसे कि प्लेट 1 और 22 में डिंका जातियां दिखाई गई हैं)—इनकी खाल का रंग आबनूसी काला होता है। सबसे गोरे रंग वाले यूरोपियन स्कैंडिनेवियावासी होते हैं। इनकी खाल हाथी-दांत की तरह सफ़ेद होती है। इन दो चरम सीमाओं के बीच दुनिया में हर कल्पनाशील क़िस्म के रंग की खाल पाई जाती है। वास्तव में दुनिया में खालों के रंग भी उतने ही विविध होते हैं जितनी कि मानव के रहने वाली भिन्न-भिन्न जलवायु हैं।

अजीब बात है, बहुत दिनों तक सोचा जाता रहा कि दुनिया में चार भिन्न रंगों की खाल वाली चार विभिन्न प्रकार की मानव-जातियां पाई जाती हैं। ज़रा सोचिए, मिस्र के चित्रकार अपने यहां की क़ब्रों पर मनुष्यों की आकृतियां रेखांकित करते और फिर उनमें लाल, सफ़ेद, पीला, काला रंग भर दिया करते थे। मानव-विज्ञानियों ने सिद्ध किया कि ऐसा करना कितनी ग़लत कल्पना थी। समस्त मानव केवल एक ही जाति अथवा स्पीशीज़ होमो सेपियन्स हैं, भले ही उसकी खाल में चार से भी कहीं ज्यादा विभिन्न रंग पाए जाते हों।

मानव-विज्ञानियों ने जिन अलग-अलग तरीक़ों से मानव का अध्ययन किया है वह एक बड़ी ही रोचक गाथा है। निस्संदेह ये लोग न केवल प्रथम कोटि के विज्ञानी ही थे वरन् अनुभवी यात्री भी रहे होंगे। ज़रूरी था कि वे अपने साथ इस विज्ञान को दूर-दूर तक ले जाएं—अफ्रीका के विशाल रेगिस्तानों में, विषुवत् रेखीय क्षेत्रों के उन घने काले जंगलों में जो अस्वास्थ्यकर होते हुए भी सुन्दर थे, और विशाल पर्वतमालाओं की हिमाच्छादित पहाड़ियों पर। संक्षेप में, उनमें न केवल श्रीमती क्यूरी के जैसी प्रखर संवेदनशीलता रही होगी वरन् डाक्टर लिविंगस्टन जैसे यात्री-खोजकर्त्ता के समान साहस और धैर्य भी रहा होगा।

आरम्भ में मानव-विज्ञानियों ने अपने अनुभव और नतीजे आंख के द्वारा देखे और दर्ज किए। अगर उन्होंने सोचा कि कोई जनजाति गहरी भूरी दिखाई पड़ती है तो उन्होंने उसे गहरा भूरा लिखा। शीघ्र ही उन्होंने महसूस किया कि यह तरीक़ा बहुत ही कच्चा और कमज़ोर था। अतः उन्होंने पकाई गई मिट्टी के छोटे-छोटे चौकोर चपटे टुकड़े बनाए और उन पर काले से लेकर सफ़ेद तक के बीच के छत्तीस अलग-अलग रंग रंगे। ऐसी हर रंगदार टिकड़ी को एक खास संख्या दी जाती थी और जब भी किसी मानव की खाल का रंग नोट करना होता था तो उस एक खास टिकड़ी की संख्या नोट कर ली जाती थी जिसका रंग उस व्यक्ति की खाल से ज्यादा-से-ज्यादा मिलता था। लेकिन बिल्कुल ठीक-ठीक मिलान करने में इस विधि में भी बेहद कठिनाई थी।

अतः मानव-विज्ञानियों को और भी अधिक उत्तम विधियां विकसित करनी पड़ीं। एक अत्यंत योग्यतापूर्ण तरीक़ा निकाला गया जिसमें एक डिस्क पर कई कम-

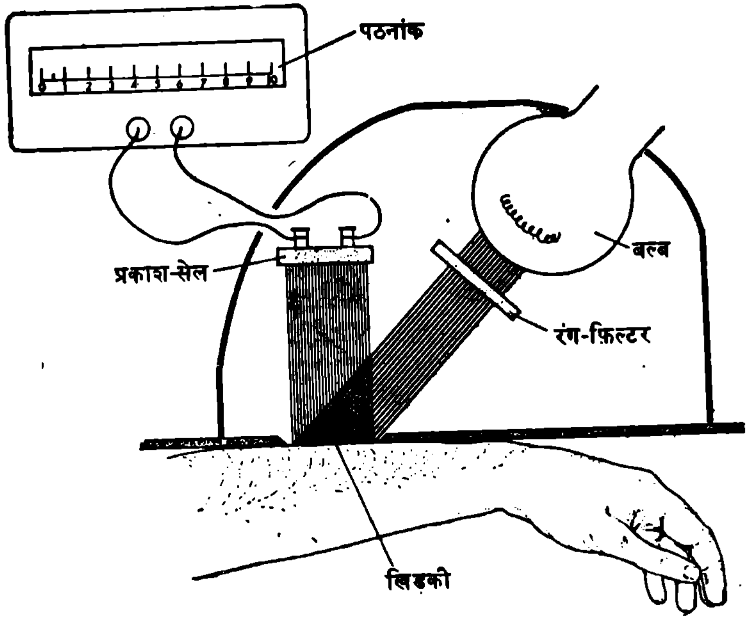
ज्यादा रंग लगाए जाते हैं। इस डिस्क को कई रंग-खण्डों में विभाजित किया जाता है और ये खण्ड आवश्यकतानुसार चाहे-जितने छोटे-बड़े बनाए जा सकते हैं। जब इस डिस्क को ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह घुमाया जाता है तब डिस्क पर केवल एक ही रंग दिखाई पड़ता है—यह एक रंग उन सभी अलग-अलग अनुपात के रंगों का मिश्रण होता है जो उस डिस्क पर बने होते और स्थिर डिस्क में अलग-अलग दिखाई देते हैं। इन रंग-खण्डों के आकार को छोटा-बड़ा करके खाल के रंग से बिल्कुल सही-सही तुलना करने में कोई खास कठिनाई नहीं होती—बार-बार अदल-बदलकर आज़माने से यह आसानी से हो जाता है। इस प्रकार की डिस्क में भी हालांकि रंग की तुलना आँखों से ही देखकर की जाती थी, परन्तु इससे यह लाभ हुआ कि अब मानव-विज्ञानियों के पास मिट्टी की टिकड़ियों के केवल छत्तीस रंग ही नहीं थे बल्कि उन्हें एक सम्पूर्ण रंग-शृंखला प्राप्त हो गई थी जिससे खाल के हर प्रकार के रंग की तुलना की जा सकती थी।

खाल के रंगों के जानने का यह तरीक़ा ज्यादा सही था, फिर भी इससे प्राप्त होने वाले नतीजे बहुत-कुछ उस प्रकाश पर निर्भर करते थे जो परखी जा रही खाल पर पड़ता होता था। सभी का अनुभव है कि कपड़ों के रंग घरों के भीतर और घरों के बाहर बिल्कुल एक-से नहीं दिखाई पड़ते, या कि ये रंग दोपहर और संध्या को एक-से नहीं दिखाई पड़ते, तो ठीक इसी तरह व्यक्तियों की खालें भी अलग-अलग प्रकाश के कारण अलग-अलग रंग की दिखाई पड़ सकती हैं। उदाहरणतः सड़कों पर अगर सही बत्तियाँ न हों तो लोगों के चेहरों के रंग न जाने क्या-क्या दिखाई पड़ सकते हैं।

मगर आजकल मानव-विज्ञानियों के पास एक प्रकार की मशीन है जिससे लगता है कि सारी कमियाँ दूर की जा सकती हैं। इस मशीन को स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर (Spectrophotometer) अथवा वर्णप्रकाशमापी कहते हैं। इस यंत्र के द्वारा अलग-अलग रंगों—यानी अलग-अलग तरंग-दैर्घ्यों—का प्रकाश व्यक्ति की खाल पर डाला जाता है और फिर उसकी खाल से परावर्तित होने वाले प्रकाश को एक यांत्रिक नेत्र (प्रकाश-सेल, photo-cell) रिकार्ड करता है कि हर तरंग-दैर्घ्य अथवा रंग की कितनी मात्रा परावर्तित हो रही है। मगर वास्तव में मशीन से जो चीज़ प्राप्त होती है वह एक ग्राफ़ है। खाल के हर रंग से ग्राफ़ पर एक अलग आकृति की वक्ररेखा बनती है और यह मशीन उन दो रंगों का भी सूक्ष्म अन्तर बता सकती है जो अन्यथा देखने में बहुत ही समान दिखाई पड़ते हैं। किसी एक जनजाति के त्वचा-रंगों के 'नमूनों' का अध्ययन करके अब वैज्ञानिक एक ऐसा ग्राफ़ तैयार कर सकते हैं जिससे उस विशेष जनजाति के त्वचा-रंग का औसत मान पता चलता है।

इन तकनीकों की सहायता से अब वैज्ञानिक लोग संसार के लगभग प्रत्येक देश से विशाल सूचना-भण्डार एकत्रित करते जा रहे हैं। प्रश्न उठता है कि इस सब कार्य

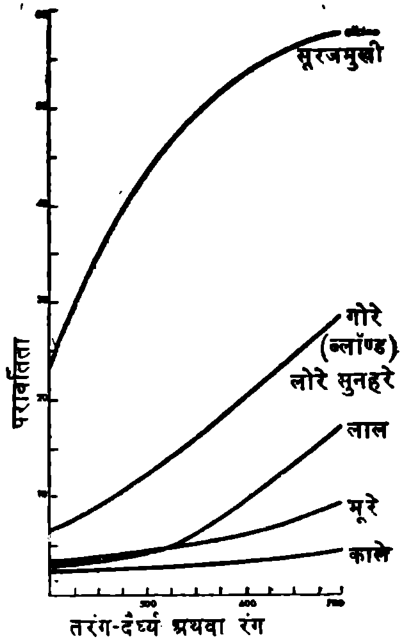
से हमें त्वचा-रंग की विभिन्नताओं के आधार के बारे में क्या पता चलता है ? पहली-पहली नज़र से तो लगता है कि यह बहुत ही सरल-सी बात है—जितना आप विषुवत्



चित्र 1. खाल के रंग को स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर द्वारा सबसे अच्छी तरह मापा जा सकता है। प्रकाश को एक रंग-फ़िल्टर में से गुज़ारकर खाल पर डाला जाता है और परावर्तित प्रकाश की मात्रा को एक प्रकाश-सेल से रिकार्ड किया जाता है। काली खाल से सबसे कम प्रकाश परावर्तित होता है, और पीली खाल से सबसे ज्यादा। अलग-अलग फ़िल्टर इस्तेमाल करके वक्ररेखाएँ (curves) बनाई जा सकती हैं जैसे कि अगले चित्र में बनाई गई हैं।

रेखा के समीप जाते हैं उतना ही खाल ज़्यादा काली होती जाती दिखाई पड़ती है। उदाहरणतः उत्तरी यूरोप में खाल का रंग काफ़ी हल्का होता है। भूमध्य सागर के समीप इनका रंग सांवला-सा होने लगता है और उत्तर अफ्रीका में खाल का रंग काफ़ी गहरा भूरा हो जाता है। मध्य अफ्रीका में लोगों का रंग लगभग काला होता है। इसी प्रकार एशिया में भी उत्तर से दक्षिण की ओर जाते हुए रंग में परिवर्तन होता जाता है। तो ऐसा जान पड़ता है कि जलवायु जितना ज़्यादा गर्म होती जाती है खाल भी उतनी ही ज़्यादा काली होती जाती है। जो कुछ कहा वह सच है, लेकिन

बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती, और न ही इसी आधार पर संसार की हर जाति के त्वचा-रंग का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।



चित्र 2. बालों के पाँच विभिन्न प्रकार के रंगों की स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर से बनाई गई प्रतिरूपी वक्ररेखाएँ।

विषुवत् रेखा के समीप जहाँ पर सबसे ज्यादा काले लोग होते हैं वे प्राय: उष्णकटिबंधीय जंगलों में रहते हैं। इन क्षेत्रों के ऊँचे-ऊँचे और घने वृक्ष मनुष्य के सिर के ऊपर एक साया बनाए रखते हैं, और यदा-कदा ही सूरज की किरणें इन वृक्षों को वेधकर नीचे की घनी वनस्पति पर आ पाती हैं। ऐसे जंगलों के वासी अपना अधिकतर समय छाया में ही बिताते हैं और यहाँ का ताप कभी बहुत ज़्यादा ऊँचा नहीं जाता जैसा कि गर्म शुष्क मरुस्थलों में पहुँच जाया करता है। वहाँ की धूप भी लगभग उतनी ही तेज़ होती है, वहाँ किसी प्रकार का बचाव-साधन नहीं होता और रेगिस्तान की रेत से गर्मी तथा चौंध दोनों ही परावर्तित होते हैं। इसके बावजूद रेगिस्तान के वासियों की खाल का रंग जंगल के वासियों की खाल के रंग से कहीं ज़्यादा हल्का होता है। अत: स्पष्ट है कि यह कहना सही नहीं होगा कि जलवायु जितनी गर्म होगी खाल का रंग भी उतना ज्यादा काला होगा। तो फिर इस सबका हमें कोई और ही कारण ढूँढना होगा।

एक जवाब तो शायद यह हो सकता है कि कुछ जनजातियाँ अपने आवासों में लगभग हाल ही में पहुँची हैं—इतने ज्यादा हाल ही में कि अपने बाहरी जलवायु के अनुसार अनुकूलित (adapted) होने का उन्हें अभी समय ही नहीं मिल पाया। कम-से-कम अमरीका में तो ऐसा है ही—क्योंकि अमरीका एक ऐसा महाद्वीप है जहाँ मानव का प्रसार सबसे बाद में पहुँचा है। वहाँ पर इन क्षेत्रों में कोई भी वास्तविक काली खाल वाले लोग नहीं रहते जबकि आशा तो की ही जा सकती थी—अलबत्ता वहाँ पर बस अफ्रीकी नीग्रो ही हैं जो निस्संदेह कोई एक सौ वर्ष पहले दासों के रूप में अफ्रीका से आयातित किए गए थे।

आज की जो एक सबसे पुरानी प्रजाति है वह हाटेनटाट (Hottentot) नामक लोगों की मरुस्थलवासी जाति है। वे दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में इतने अधिक समय से रहते चले आ रहे हैं कि लगता है कि वे वहाँ की गर्म दम घोटने वाली जलवायु के लिए ज़रूर अनुकूलित हो गए होंगे। उनकी खाल पीले-भूरे रंग की होती है। इनकी खाल के रंग पर बहुत खोजबीन की गई मगर कोई बात पता न चल सकी, और मानव-विज्ञानियों को पुनः अपनी प्रयोगशाला में खोजबीन करने पर विवश हो जाना पड़ा।

इन अन्वेषणों के लिए उन्हें शरीर-क्रियाविज्ञानी होना पड़ा। अब कुछ पिछले वर्षों से वैज्ञानिक लोग खाल की बाहरी परतों का निरीक्षण-परीक्षण करते रहे हैं। वे खाल का विच्छेदन, विश्लेषण, मापन और अभिलेखन कर रहे हैं ताकि खाल के रंग बनने का भेद पता चल सके।

एक सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह पता चली कि काले से लेकर सफ़ेद तक कोई-सा भी रंग क्यों न हो उसका आधार केवल एक ही रासायनिक पदार्थ है। यह पदार्थ मीलैनिन (melanin) है—यह गहरे भूरे अथवा काले रंग का वर्णक (pigment) जो लगभग प्रत्येक मानव में खाल की ऊपरी परतों से ज़रा-सा ही नीचे पाया जाता है। इस खोज से पहले बहुत से लोग सोचा करते थे कि काली खाल में कोई एक ऐसी चीज होती है जो गोरी खाल में नहीं होती। उनका खयाल था कि यही कोई वस्तु काले लोगों को काला बनाती थी और इस प्रकार गोरे लोगों में इस प्रकार के पदार्थ का 'संदूषण' (contamination) नहीं पहुँचता था। विज्ञान ने ऐसे लोगों पर एक ज़बर्दस्त चोट की (और ऐसा करना ठीक भी था), विज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि केवल सूरजमुखी (albino) को छोड़कर संसार के हर व्यक्ति में एक ही वर्णक पाया जाता है—चाहे वह काला हो, भूरा हो या गोरा हो। अन्तर बस इतना है कि खाल जितनी ज्यादा काली होगी उसमें मिलैनिन उतना ही ज्यादा होता है।

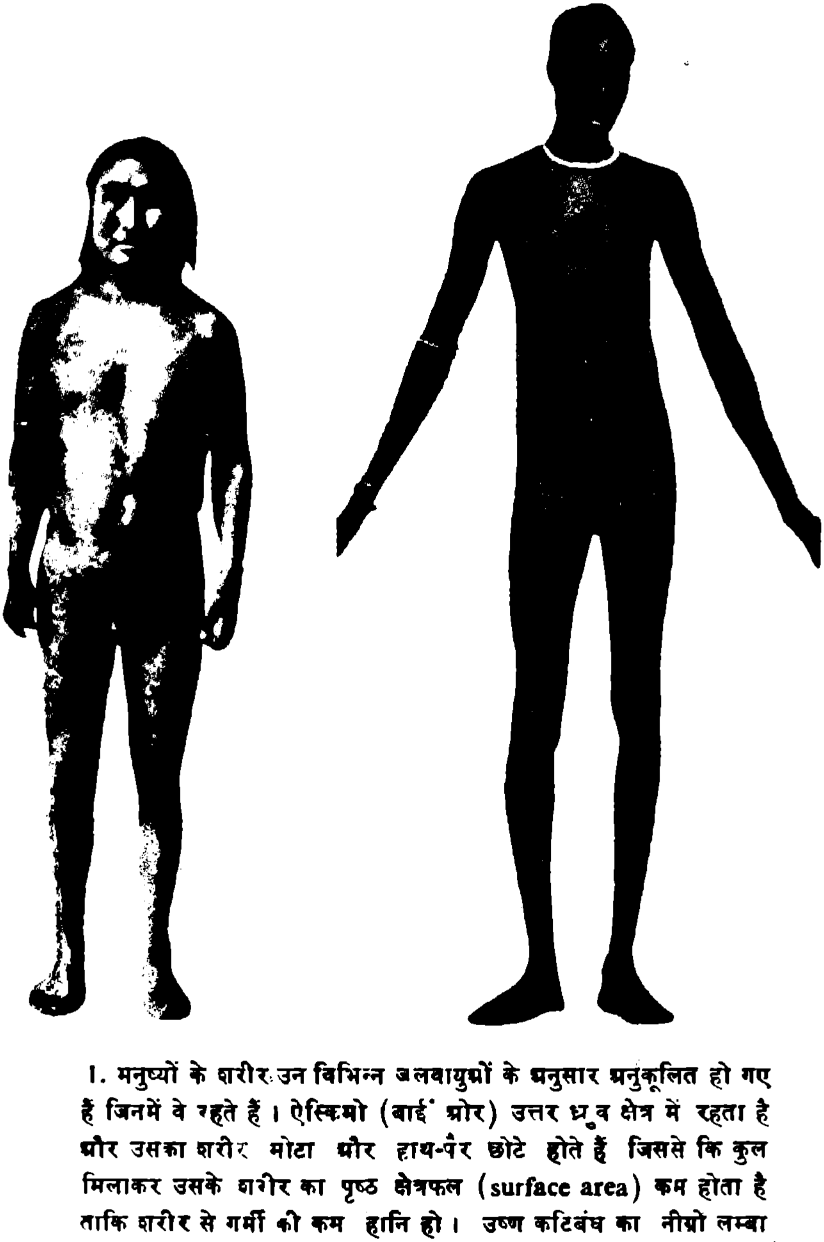
मीलैनिन का रंग थोड़ा-थोड़ा भिन्न हो सकता है, लेकिन दुनिया की अलग-अलग जातियों में पाए जाने वाले त्वचा-रंग के अन्तर इसके कारण नहीं होते।

समस्या का रहस्य मीलैनिन की कणिकाओं का **सांद्रण** (concentration) है। जब ये कणिकाएँ पास-पास सटी होती हैं तब खाल काफ़ी गहरे रंग की दिखाई पड़ती है। मगर जब ये कणिकाएँ ज़्यादा दूर-दूर हों तब खाल काफ़ी हल्के रंग की दिखाई पड़ती है। चित्र 3 में मनुष्यों की रेखाकृतियाँ दिखाई गई हैं, इनमें से दो आकृतियों में काले बिंदु भरे हैं लेकिन इन बिंदुओं का सांद्रण अलग-अलग है। एक आकृति में बिंदु पास-पास सटे हैं और दूसरी मे वे दूर-दूर हैं। कुल मिलाकर चित्रों की झलक में मात्र बिंदु नहीं झलकते—वरन् दो प्रकार के धूसर रंग दिखाई देते हैं। ऐसा इसलिए है कि बिंदु इतने पास-पास हैं कि उन्हें केवल आवर्धक लेन्स के द्वारा ही ठीक से देखा जा सकता है। अगर आप मान लें कि ये बिंदु मीलैनिन की सूक्ष्म कणिकाएँ हैं तो आपको तुरन्त स्पष्ट हो जाएगा कि खाल की अलग-अलग रंगतें कैसे बन जाती हैं। बिना बिंदुओं वाले बाएँ चित्र को एक सूरजमुखी व्यक्ति (albino) माना जा सकता है।

खाल में मीलैनिन का निर्माण एक विशेष प्रकार की कोशिका मीलैनिन-कोशिका (melanocyte) में होता है (प्लेट 2 का फ़ोटोचित्र देखिए)। शक्तिशाली माइक्रोस्कोपों से इन कोशिकाओं के आकार को इतना बढ़ाया जा सकता है कि आपको मीलैनिन कणिकाएँ स्पष्ट नज़र आने लगेंगी। प्रश्न उठता है कि ये कोशिकाएँ मीलैनिन का किस प्रकार निर्माण करती हैं।

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मानव-विज्ञानी को एक रसायनज्ञ बन जाना पड़ेगा (अब तक आपको महसूस हो चुका होगा कि मानव-विज्ञानी को 'विज्ञान का हरफ़नमौला' होना ज़रूरी है)। हमारे भोजन का एक अनिवार्य भाग प्रोटीन हैं, और ये प्रोटीन लगभग बीस प्रकार के ऐमिनो अम्ल (amino acids) नामक पदार्थों के बने होते हैं। इनमें से एक पदार्थ टाइरोसीन (tyrosine) है जिसमें से मीलैनिन बन सकता है। ऐसा कर सकने के लिए कोशिकाओं को एक अन्य रसायन की आवश्यकता पड़ती है और वह है एक एन्ज़ाइम टाइरोसिनेज़ (tyrosinase), बस होता क्या है कि टाइरोसिनेज़ एन्ज़ाइम प्रोटीनों से प्राप्त टाइरोसीन को मीलैनिन में बदल देता है।

इन खोजों से सूरजमुखी व्यक्तियों के बारे में एक नए और रोचक प्रकार से विचार करने का मार्ग खुला (सूरजमुखी व्यक्ति कैसा दिखाई पड़ता है इसका अंदाज़ा आप फ़ोटोचित्र (प्लेट 3) देखकर लगा सकते हैं)। सारे संसार में मात्र सूरजमुखी ही ऐसे लोग हैं जिनकी खाल और बालों में मीलैनिन क़तई नहीं होता। इनके बाल बिल्कुल सफ़ेद होते हैं, इनकी खाल भी सफ़ेद होती है या हल्की गुलाबी। लेकिन आश्चर्य की बात है कि सूरजमुखी की खाल में भी मीलैनिन-कोशिकाएँ बहुत संख्या में होती हैं। क़ायदे में इनमें भी प्रोटीन से मिले टाइरोसीन को मीलैनिन में बदलने की क्षमता होनी चाहिए। मगर दुर्भाग्य से सूरजमुखी में



1. मनुष्यों के शरीर उन विभिन्न जलवायुओं के अनुसार अनुकूलित हो गए हैं जिनमें वे रहते हैं। ऐस्किमो (बाईं ओर) उत्तर ध्रुव क्षेत्र में रहता है और उसका शरीर मोटा और हाथ-पैर छोटे होते हैं जिससे कि कुल मिलाकर उसके शरीर का पृष्ठ क्षेत्रफल (surface area) कम होता है ताकि शरीर से गर्मी की कम हानि हो। उष्ण कटिबंध का नीग्रो लम्बा और पतला होता है, इसलिए उसके शरीर की सतह अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा होती है जिसके द्वारा विकिरण तथा पसीने के वाष्पन से गर्मी बाहर निकलती है।



2. मीलैनिन-कोशिका : इसी कोशिका में काला वर्णक मीलैनिन बनता है। कोशिका के भीतर मीलैनिन कणिकाएँ दिखाई पड़ रही हैं।



3. नीग्रो प्रजाति का एक सूरजमुखी व्यक्ति। सूरजमुखी व्यक्ति हर जाति में पाए जाते हैं। केवल ये ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी खाल और बालों में मीलैनिन बिल्कुल नहीं होता।





4, 5. उत्तर जापान के रहने वाले एयनू लोग। एशियाई लोगों की तुलना में इनके शरीर पर कहीं अधिक बाल होते हैं। कदाचित् ये उस एक जाति के बचे-खुचे लोग हैं जो किसी समय साइबेरिया से यूरोप तक फैले थे।



6. न्यूगिनी के लोगों में घने घुंघराले बाल होते हैं—और ये बाल लहरदार तथा ऐंठ पड़ हुए बालों का मिला-जुला रूप है।



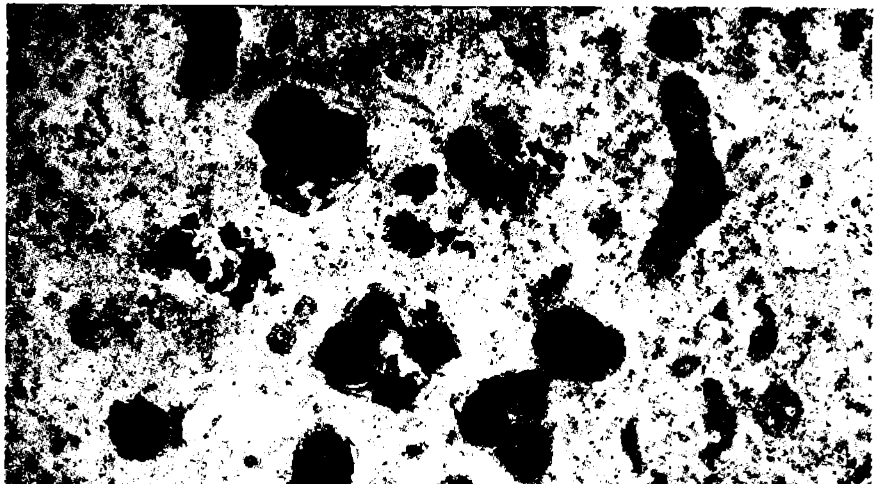
7. आस्ट्रेलिया के आदिवासी। यद्यपि इन लोगों के यहां दिन का समय तो गर्म होता है मगर रात को इन्हें पानी के जमाव-बिन्दु से भी कम का ताप सहन करना पड़ता है।



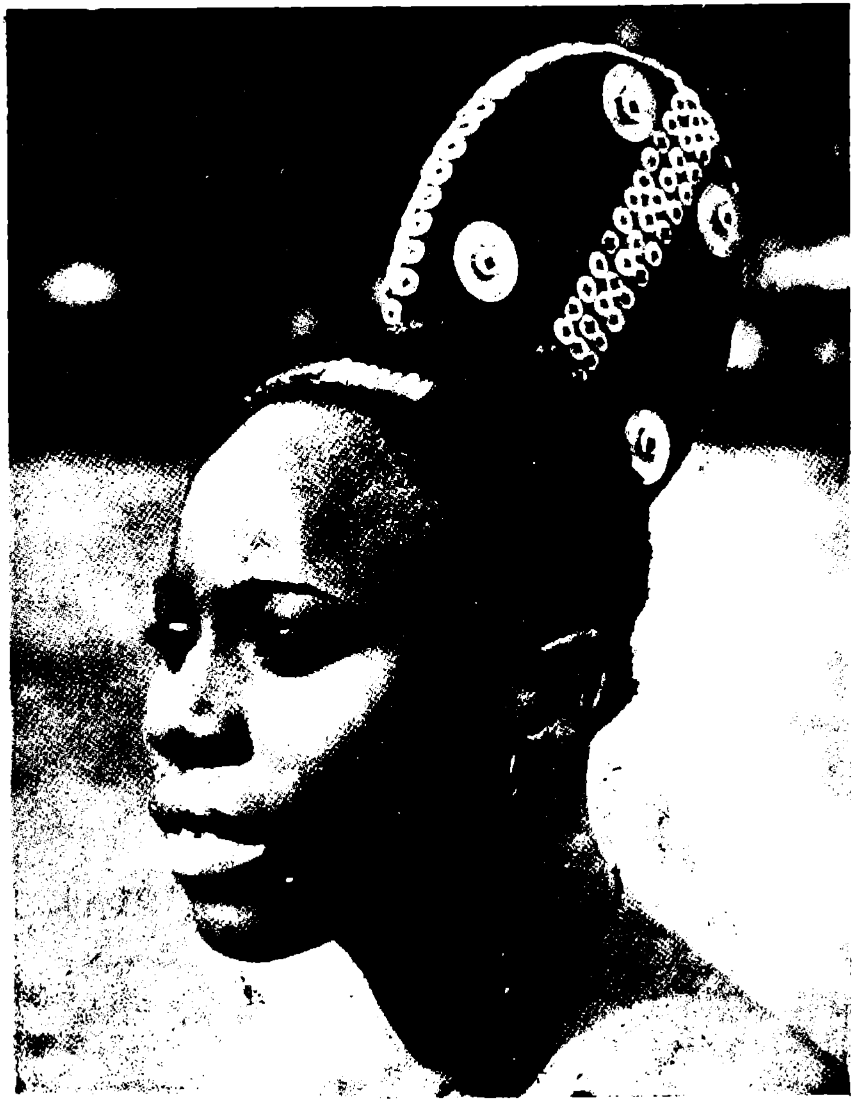


8. **बाएं** : हाटेनटाट के बुशमैन के बहुत ज्यादा ऐंठे हुए घुंघराले बाल जिन्हें "पेपरकार्न" अथवा "काली मिर्च के दाने" जैसे बाल भी कहा जाता है। इन बालों के बलों के बीच-बीच में बची खाली जगह से पसीने का वाष्पन होकर ठंडक पैदा होती है।

9. **बाएं** : एथियोपियाई बाल जो बहुत ज्यादा घने और घुंघराले हैं, लेकिन नीग्रो की अपेक्षा कहीं ज्यादा लम्बे हैं।



10. लाल रंग के बालों का रंग एक अन्य प्रकार के वर्णकों के कारण बनता है जिन्हें फीओमीलैनिन (Pheomelanins) कहते हैं। नीचे दिखाई गई कणिकाएं मीलैनिन-कणिकाओं की अपेक्षा ज्यादा गोल होती हैं (प्लेट 2 देखिए)।

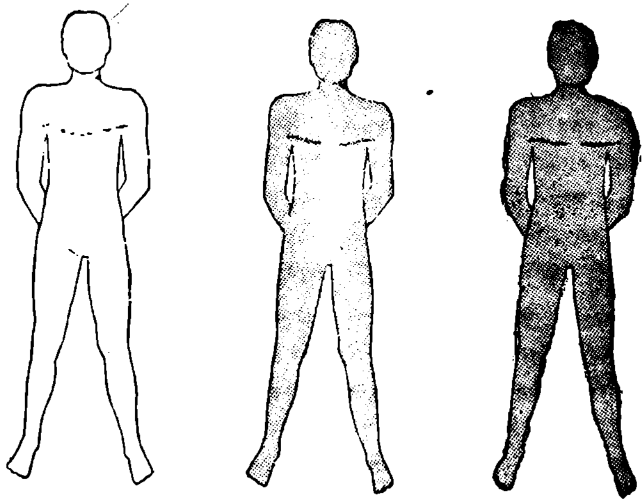


11. नाइजीरियाई बालिका—इसके घुंघराले बालों, चौड़े नथुनों तथा सामने को उभरे हुए जबड़ों एवं होठों को देखिए।



12-15. ऐस्किमो (ऊपर बाए), साइबेरियन (ऊपर दाएं), चीनी (नीचे बाएं) और जापानी, ये सभी लोग मंगोल-रूपी प्रकार के होते हैं। ऐस्किमो में ये विभेदक लक्षण सबसे अच्छे पाए जाते हैं—लम्बे, सीधे, मोटे, बाल, ऊपरी पलक का अधिपलक बसन, और सुव्यक्त गालों की हड्डियां जिन पर मोटे-मोटे गाल होते हैं। अनेक मंगोल-रूपी लक्षणों से इन व्यक्तियों को ठंड से सुरक्षा मिलती है।

टाइरोसिनेज एन्जाइम नहीं होता जिसके द्वारा यह काम किया जा सकता था। सूरजमुखी में टाइरोसिनेज कभी नहीं बन सकता और इसलिए उसमें मीलैनिन भी कभी नहीं बन सकता।



चित्र 3. त्वचा का रंग मीलैनिन-कणिकाओं के सांद्रण पर निर्भर करता है। केवल सूरजमुखी व्यक्ति (albino) में ही मीलैनिन नहीं होता। दाहिनी ओर के चित्र में आपको बीच के चित्र की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में काले बिंदु दिखाई देंगे। अतः दाहिना चित्र अधिक काला दिखाई पड़ता है, हालांकि दोनों चित्रों में बिंदुओं का रंग एक ही है।

अतः सबसे अधिक स्पष्ट दीखने वाला रंग-भेद यानी गोरे और काले का अन्तर इसी मीलैनिन से होता है। मगर फिर प्रश्न उठता है कि खाल में गुलाबी तथा पीले रंग कैसे आ जाते हैं ?

जब वैज्ञानिकों ने खाल की परतों को अधिक बारीकी से देखना शुरू किया तब उन्हें ये परतें मानो सैंडविच जैसी दिखाई पड़ीं। इस सैंडविच की सबसे बाहरी परतें अधिकतर कीरैटिन (keratin) नामक पदार्थ की बनी होती हैं—यही पदार्थ बाल, नाखून और खुर का मुख्य रचक पदार्थ होता है। सैंडविच की बीच की चीज (यानी भराव के रूप में) मीलैनिन-कोशिकाएँ तथा उनकी मीलैनिन कणिकाएँ होती हैं ; और सैंडविच की सबसे निचली यानी सबसे भीतरी परत रक्त-वाहिकाओं की होती है जिनमें से शरीर की जीवन-दायनी ऑक्सीजन की सप्लाई प्रवाहित होती है।

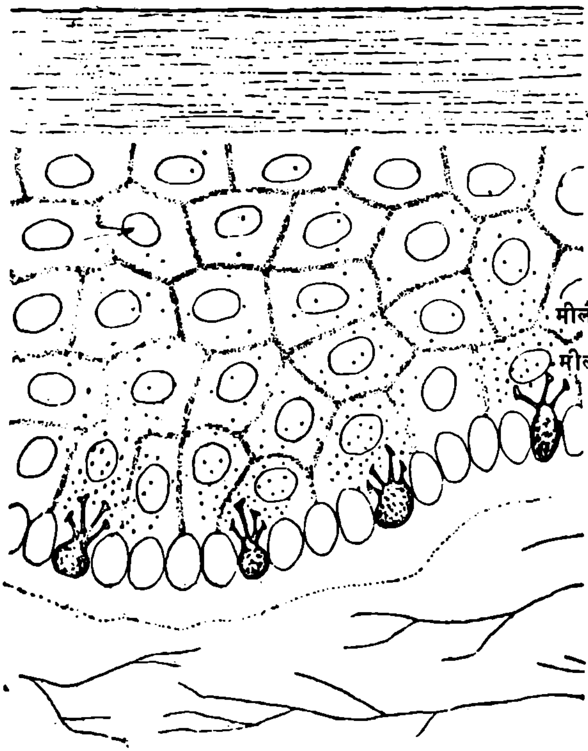
खाल की यही सबसे भीतरी परत खाल को गुलाबी या लाल रंग प्रदान करती है। यदि मीलैनिन-कणिकाएँ बहुत ज़्यादा सट-सटकर ठँसी हुई न भरी हों तो उनमें से पार होकर रक्त के हीमोग्लोबिन अणुओं की झलक बाहर आने लगती है। अतः यदि किसी भी कारण खाल में रक्त का बहाव तेज़ हो जाता है तो खाल सुर्ख़ दीखने लगती है—शर्माने पर, उलझन में पड़ जाने पर, शारीरिक परिश्रम करने पर, या गले में ज़ोर का धसका लग जाने पर प्रायः चेहरा लाल हो जाया करता है। अगर आपकी खाल बहुत गहरे रंग की है तब मीलैनिन की परत के नीचे की रक्त-वाहिकाएँ बीच से नज़र नहीं आतीं—और नहीं तो कम-से-कम इतनी तो नज़र आती ही नहीं। और सूरजमुखी व्यक्ति के मामले में तो इसके ठीक उल्टा होता है। सूरजमुखी में मीलैनिन होता ही नहीं और यहाँ तक कि उसके आँख के भीतर की रक्त-वाहिकाएँ भी बाहर से झलकती हैं—यही कारण है कि सूरजमुखी व्यक्तियों की आंखें लाल या गुलाबी-सी दिखाई पड़ती हैं, न कि भूरी या काली।

अन्य रंग जैसे कि पीले रंग इस सैंडविच रूपी खाल की सबसे बाहरी परत में पाए जाते हैं। इस परत में से गुज़रने वाले प्रकाश में वह क्रिया होती है जिसे वैज्ञानिक लोग 'छितराना' (scattering) कहते हैं। इस क्रिया के कारण खाल सफ़ेद एवं अपारदर्शी दिखाई पड़ती है बशर्ते कि मीलैनिन का सांद्रण कम हो। (यह वही प्रक्रिया है जिसके कारण आसमान के बादल सफ़ेद और ठोस दिखाई पड़ते हैं।) इस छितराने से खाल के रंग पर एक बहुत ही महत्व का प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकों को खाल की सबसे बाहरी परतों में एक और वर्णक कैरोटीन (carotene) मिला है। कैरोटीन उन वर्णकों का एक निकट का रासायनिक सम्बन्धी है जिनके द्वारा फूलों की पंखुड़ियों और पतझड़ की पत्तियों के रंग प्रकट होते हैं। प्रकटतः इसी रसायन के कारण खाल के पीले रंग दिखाई पड़ते हैं जैसे कि चीनियों की तरह अनेक एशियाई लोगों में पाए जाते हैं।

साथ ही एक और बात भी है। खाल की ऊपरी परत में स्वयं मीलैनिन का भी एक रासायनिक सम्बन्धी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पाया जाता है। इस सम्बन्धी को मीलैनाइड (melanoid) कहते हैं। लेकिन मीलैनिन-कोशिकाओं में मीलैनिन से यह मीलैनाइड कैसे बनता है—इस बारे में अभी तक कोई भी जानकारी नहीं है।

अब आपको पता चल गया कि मानव-विज्ञानियों को काफ़ी-कुछ मालम है कि खाल में किस तरह रंग बनते हैं। मीलैनिन, रक्त का हीमोग्लोबिन, कैरोटीन, छितराना, मीलैनाइड—ये सभी चीज़ें खाल को रंग प्रदान करने में अपना-अपना योगदान देती हैं। निस्संदेह इस काम में सबसे बड़ा हाथ मीलैनिन का ही है, और वास्तव में गुज़रे दिनों में सारा दोष-अदोष इसी पदार्थ के मत्थे मढ़ा गया है! लेकिन प्रश्न उठता है कि आखिर खाल के अलग-अलग रंग होते ही क्यों हैं? और खास तौर से प्रश्न यह है कि मीलैनिन हमारे लिए इतने महत्व का क्यों है?

मीलैनिन की कणिकाएँ खाल के काले धूप के चश्मे हैं। ये खाल के स्वामी को धूप की चमक से बचाते हैं। इन कणिकाओं के काम करने का तरीक़ा अब वैज्ञानिकों को सही-सही पता चल चुका है। यह मीलैनिन सूर्य से आने वाली



चित्र 4. रक्त-वाहिकाओं से खाल में लाल-लाल-सा रंग बन जाता है। वर्णक-कोशिकाएँ (मीलनिन-कोशिकाएँ) गहरी भूरी अथवा काली कणिकाएँ बनाकर उन्हें बीच की परत में पहुँचा देती हैं। इनके अलावा कैरोटीन तथा छितराव के द्वारा ऊपरी परत में अन्य प्रभाव प्रकट होते हैं।

भयंकर पराबैंगनी (ultra-violet) किरणों को सोख लेता है। ये किरणें अदृश्य हैं, मगर इनसे भारी हानि हो सकती है। इन्हीं किरणों से पर्दों और ग़ालीचों के रंग उड़ जाते हैं और सफ़ेद खाल को ये किरणें एक-दो घंटों में ही जला सकती हैं। आपने कभी समुद्रतट पर गर्मी के दिनों में किसी लाल चेहरे वाले पर्यटक को देखा होगा जो इन्हीं किरणों का प्रभाव होता है।

इन भयंकर किरणों से बचने का जो एक तरीक़ा शरीर में पाया जाता है वह मीलैनिन का अधिक मात्रा में निर्माण करना है। उदाहरण के लिए अगर आप हर रोज कुछ घंटों के लिए सूर्य-स्नान करें तो आपकी खाल धीरे-धीरे गहरे भूरे रंग की होती जाएगी यानी खाल का रंग काला पड़ता जाएगा। तब आपके शरीर ने अधिक मीलैनिन बना लिया होता है और उसके द्वारा आपकी सूर्य-किरणों के प्रति अधिक सुरक्षा हो जाती है।

अतः यह स्पष्ट है कि उष्णकटिबंधों में रहने वाले काली चमड़ी के लोगों को धूप से अधिक सुरक्षा मिली होती है जबकि इसके विपरीत गोरी चमड़ी वाले लोगों को वहाँ पर रहने में कम सुरक्षा प्राप्त होगी। लेकिन आप यह न समझें कि यदि गोरी चमड़ी वालों का कोई परिवार किसी गर्म मुल्क में बस जाए तो वहाँ की धूप से उनकी खाल काली हो जाएगी और यह कि उनकी आगे होने वाली सन्तानों में पहले से ही काली खाल होगी ताकि उनकी धूप से सुरक्षा हो सके। विकास इस प्रकार नहीं होता।

कल्पना कीजिए कि हज़ारों-हज़ारों वर्ष पूर्व अपेक्षाकृत हल्के रंग की खाल वाले कुछ लोग किसी एक गर्म देश में आकर रहने लगे। उन्हें वहाँ रहने में बड़ी मुसीबत रही होगी और उन्हें धूप-ताम्रता (sun-burn) के विरुद्ध एक निरन्तर युद्ध लड़ते रहना पड़ा होगा। उनमें से कुछ लोग धूप और गर्मी के विरुद्ध लड़ी जा रही इस लड़ाई में हार गए होंगे और लू लगने तथा धूप-ताम्रता से पीड़ित होकर मृत्यु के शिकार हो गए होंगे। लेकिन दुनिया की हर मानव-जनसंख्या में बहुत बार अक्सर ही प्रकृति का एक अचम्भा हुआ करता है जिसमें वंशागति की प्रक्रिया में कुछ भूल-चूक या अदल-बदल हो जाया करती है। इन भूल-चूक को वैज्ञानिक लोग उत्परिवर्तन अथवा म्यूटेशन (mutation) कहते हैं। म्यूटेशन तब होते हैं जब शरीर की कुछ सूक्ष्म संरचनाएँ जिन्हें जीन (Gene) कहते हैं थोड़ी-सी परिवर्तित हो जाती हैं। (जीन 'वंशागति की सूचना' को माता-पिता से सन्तान में पहुँचाते हैं, तथा इस पुस्तक में उनके बारे में और बहुत-कुछ कहा जाएगा।) म्यूटेशन के कारण कोई बच्चा अपने माता-पिता से भी अधिक काले रंग का पैदा हो सकता है, या फिर और तो और काले रंग के माता-पिता के भी कोई सूरजमुखी सन्तान पैदा हो सकती है।

अतः कालान्तर में ऐसी जनसंख्या में कुछेक काली खाल वाले लोग भी पैदा हो जाएँगे। इन लोगों को धूप से टक्कर लेने में इतनी ज़्यादा कठिनाई नहीं होगी। इनकी खालों में मौजूद मीलैनिन इनकी रक्षा करेगा और इस प्रकार वे औसतन जीवित रह पाएँगे, शादी-विवाह करेंगे तथा उनके और आगे बच्चे होंगे। और चूँकि इन बच्चों ने अब भी म्यूटेशन का परिणाम धारण किया हुआ होगा इसलिए इनकी खाल भी काले रंग की होगी। अपने नम्बर पर इनमें भी जीवित बने रहने की प्रवृत्ति होगी तथा उनके भी काली चमड़ी वाले बच्चे होंगे। इस प्रकार उनकी काली चमड़ी

धूप के विरुद्ध लड़ी जा रही लड़ाई में एक बड़ा सहारा साबित होगी। विज्ञान के अध्येता इस प्रकार के लक्षण को 'वरणात्मक लाभ' (selective advantage) कहते हैं।

वर्ष-प्रतिवर्ष समय बीतते जाने के साथ धूप के प्रभाव से गोरे लोग ज़्यादा मरेंगे और काले लोग कम। अतः अन्ततः लगभग सभी मूल गोरी चमड़ी के लोग समाप्त हो जाएँगे और वहाँ बस काली चमड़ी वाली आबादी बन जाएगी। वैज्ञानिक लोग इस प्रकार की क्रिया को 'प्राकृतिक वरण' (natural selection) कहते हैं, क्योंकि इसमें प्रकृति किसी जनसंख्या में से ऐसे लोगों को चुन लेती यानी उनका वरण कर लेती है जो अपने वातावरण में जीवित बने रह सकने के लिए सबसे अधिक अनुकूल हैं।

विषुवत्-रेखा के पास रहने पर काली खाल के कुछ और भी लाभ हैं। वैज्ञानिकों ने हाल ही में सिद्ध किया है कि इन प्रदेशों में रहने वाले गोरी चमड़ी के लोगों में वहाँ के स्थानीय काली चमड़ी के वासियों की अपेक्षा त्वचा के कैंसर होने की तीस से लेकर चालीस प्रतिशत तक अधिक सम्भावना है। तो देखिए, यहाँ भी गर्म क्षेत्र में प्रकृति उन्हीं लोगों को चुनेगी जिनकी खाल काली है, क्योंकि उनमें त्वचा के कैंसर से मृत्यु होने की सम्भावना कहीं ज़्यादा कम होगी।

लेकिन किसी भी उष्णकटिबंधीय देश की सबसे विशेष बात कदाचित् वहाँ की गर्मी की घुटन होती है। धूप परेशान किए रखती है, यदा-कदा बारिशें आती रहती हैं, और अक्सर वातावरण ऐसा रहता है मानो हमाम के पानी से नहा रहे हों। निस्संदेह काली खाल से धूप की गर्मी और साथ-ही-साथ उसके प्रकाश से भी कुछ सुरक्षा हो जाती होगी? प्रकटतः ऐसा नहीं होता, क्योंकि आप जानते ही हैं कि काले की अपेक्षा सफ़ेद से प्रकाश या गर्मी का अधिक परावर्तन होता है। दूसरे अर्थों में आशा की जा सकनी चाहिए कि सफ़ेद चमड़ी वाले लोगों की अपेक्षा काली चमड़ी वाले लोग अधिक गर्मी जज़्ब करेंगे। वास्तव में है भी ऐसा ही, वैज्ञानिकों ने पाया है कि सफ़ेद चमड़ी वाले यूरोपियन की अपेक्षा काली चमड़ी वाला नीग्रो लगभग 30 प्रतिशत ज़्यादा गर्मी सोखता है। परिणामस्वरूप गोरे आदमी की अपेक्षा नीग्रो में अधिक पसीना आने की प्रवृत्ति होगी। निश्चय ही पसीना आना, शरीर का अपने को ठंडा करने का एक तरीक़ा है—आप इसे चाहे तो प्रशीतन (refrigeration) कह सकते हैं क्योंकि रसोई का रेफ्रीजरेटर भी कुछ-कुछ इसी सिद्धांत पर कार्य करता है। अतः ऊपर से जान पड़ता है कि उष्णकटिबंधों में काली चमड़ियों से कुछ हानियाँ भी हैं—लगता है कि इनके कारण व्यक्ति की देह में अधिक गर्म हो जाने की प्रवृत्ति होगी, मगर इस चीज़ की शायद आप कभी आशा भी न करेंगे।

लेकिन क्या आपको उन हाटेनटॉट लोगों की समस्या याद है जो दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका की दम-घोट गर्मी में रहते हैं। यदि आप रेगिस्तान में रह रहे हों

तो आप बहुत ज्यादा पसीना निकालना बर्दाश्त न कर पाएँगे, भले ही आपका शरीर कितना ही गर्म क्यों न हो जाए क्योंकि पसीना निकलने के लिए जरूरी है कि आप पानी पिएँ। रेगिस्तान में पानी का महत्व सोने-चाँदी से भी ज्यादा है और निश्चय ही आप पानी को सिर्फ़ पसीने के रूप में ही नहीं खपा सकते। किन्तु हाटेनटॉट लोग वास्तव में इस तरह पानी को नहीं खपाते—उनकी खाल भूरापन लिए हुए पीली होती है और इसलिए उनकी खाल से अधिक गर्मी परावर्तित हो जाती है जबकि इसके विपरीत उसी स्थान पर रहने वाले काली चमड़ी के नीग्रो में ऐसा नहीं हो सकता। साथ-ही-साथ हाटेनटॉट की खाल का रंग इतना गहरा तो होता ही है कि हानिकर पराबैंगनी किरणों से उसकी सुरक्षा हो जाती है। दूसरे शब्दों में हाटेनटॉट में एक समझौता पाया जाता है—न बहुत काला, न बहुत गोरा, बस बिल्कुल सही है।

एक और सम्भावना भी है—शायद उसकी खाल का रंग छद्मावरण (camouflage) का काम भी करता है। हाटेनटॉट को अपने भोजन के लिए उन जानवरों का पीछा और शिकार करने पर निर्भर करना पड़ता है जो किसी समीपवर्ती जलगर्त (waterhole) पर पानी पीने आते हैं। इसके लिए उनकी खाल का रंग एक आदर्श छद्मावरण है—वह अपने इर्द-गिर्द के रेगिस्तान के रंग से बिल्कुल मेल खा जाता है और यह भी सच है कि नीग्रो की खाल का रंग भी उष्णकटिबंधीय जंगल के अंधेरे में एक उतना ही उत्तम छद्मावरण है। तो हो सकता है कि रोजाना के अपने भोजन की तलाश में इन लोगों की खालों के रंगों का इतना बड़ा लाभ रहा होगा कि प्राकृतिक वरण के द्वारा ये रंग पूरी जनजाति में अपना लिए गए।]

3. दाढ़ी, लटें और मौसम

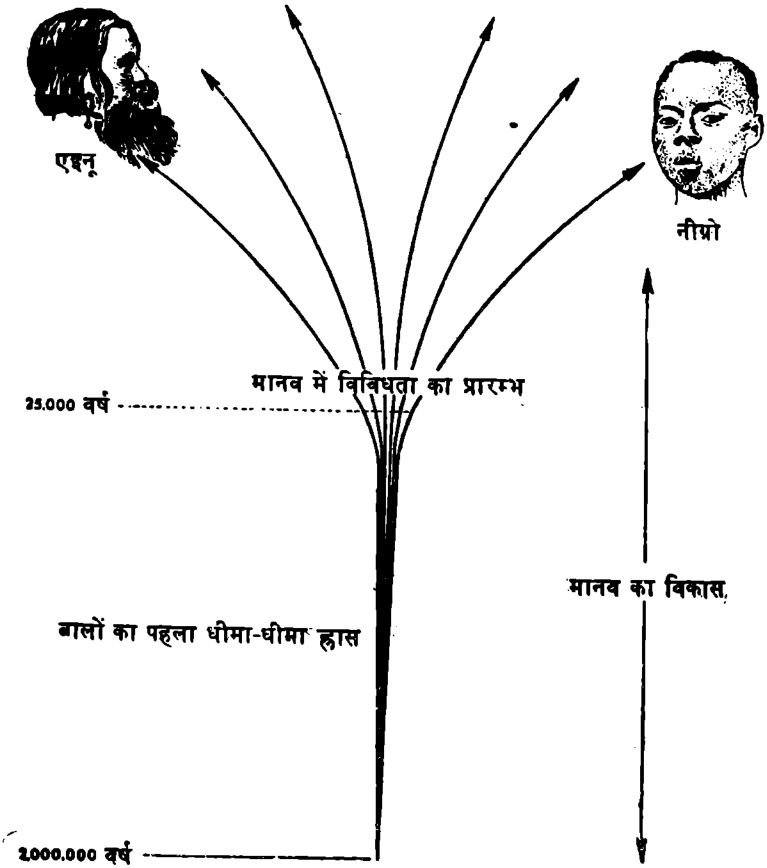
अधिकतर स्तनियों के शरीर पर बाल, पक्षियों के शरीर पर पिच्छ (feathers) और मछलियों के शरीर पर शल्क (scales) होते हैं। लेकिन इनके विपरीत मनुष्य में शरीर पर बाल होते हुए भी अन्य जानवरों की अपेक्षा बहुत कम बाल होते हैं।

ऐसा क्यों ? डार्विन ने सुझाव रखा था कि यदि किसी कारण पुरुषों एवं स्त्रियों को शरीर पर बालों का होना अनाकर्षित लगा होगा तो स्वाभाविक है कि उन्होंने अपनी जनजातियों में से ऐसे पति-पत्नी छांटे होंगे जिनमें कम बाल रहे होंगे। अतः शरीर पर बाल वाले लोगों को अपना जीवन-साथी चुनने और सन्तान प्राप्त करने की सम्भावना सबसे कम रही होगी। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों के शरीर पर सबसे कम बाल होंगे उनसे सन्तान पैदा होने की सबसे ज्यादा सम्भावना रही होगी। अतः पीढ़ी-दर-पीढ़ी मानव के शरीर पर बाल अधिकाधिक कम होते गए होंगे। डार्विन ने अपने इस मत को 'लैंगिक वरण' (sexual selection) कहा क्योंकि यह लैंगिक आकर्षण के द्वारा वरण पर आधारित था, ठीक उसी तरह जैसे कि प्राकृतिक वरण प्रकृति द्वारा वरण पर आधारित है।

मगर यह मत कभी सत्य सिद्ध नहीं हो पाया। वास्तव में बहुत से लोग इसे सही नहीं मानते। हमें यथार्थ में नहीं मालूम कि मनुष्य तथा जानवरों में इतना बड़ा अन्तर क्यों है, फिर भी इतना तो हम जानते ही हैं कि कुछ मानव-जातियों में अन्य जातियों की अपेक्षा शरीर पर ज्यादा बाल होते हैं। चित्र 5 में एक ऐसा विचार दर्शाया गया है कि पिछले 20 लाख वर्षों के दौरान किस प्रकार शरीर के बाल कम होते गए होंगे। अधिकतर अफ्रीकनों तथा एशियाइयों के शरीर पर बहुत कम बाल होते हैं। यूरोपियनों के शरीर पर प्रायः उनसे कहीं ज्यादा होते हैं। इस सामान्य नियम का एक बहुत ही रोचक अपवाद एइनू (Ainu) जाति के लोगों का है जो उत्तर जापान में रहते हैं। संसार-भर में, निश्चय ही, एइनू लोगों के ही शरीर पर सबसे ज्यादा बाल होते हैं, इन लोगों में अपने इर्द-गिर्द के एशियाई लोगों की अपेक्षा यूरोपियनों के साथ कहीं ज्यादा समानताएँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, इनकी खाल गदले सफ़ेद रंग की होती है (न कि उस क्षेत्र के अनुसार आशा किए जाने वाले पीले रंग की), और कुछ लोगों का मत है कि जो एक विशाल मानव-उपजाति किसी समय पूरे साइबेरिया से लेकर यूरोप तक फैली थी, ये एइनू उन्हीं के मात्र

उत्तरजीवी हैं। समय बीतते जाने के साथ-साथ धीरे-धीरे इस उपजाति के लोग समाप्त होते गए और बस जापान में इनका यही एक छोटा-सा टुकड़ा बाक़ी बचा है (प्लेट 4 तथा 5 देखिए)।

लेकिन प्रश्न उठता है कि कुछ लोगों के शरीर पर बाक़ी की अपेक्षा ज्यादा बाल क्यों होते हैं ? एक ओर जबकि पानी के जमाव-बिन्दु के भी नीचे के ताप वाले



चित्र 5. प्राचीनतम मानव-पूर्वजों में कदाचित् सारा शरीर बालों से ढका था। विकास के दौरान बाल कम होते गए, लेकिन कुछ जनजातियों में अन्य जनजातियों की अपेक्षा बाल ज्यादा कम हो गए। उदाहरण के लिए अफ्रीकी नीग्रो में बहुत कम बाल होते हैं जबकि उत्तर जापान के एइनू में दुनिया में सबसे ज्यादा शारीरिक बाल होते हैं।

स्थानों पर जानवरों के बाल या उनका समूह उन्हें ठंड से बचाता है, दूसरी ओर ऐसी जगहों पर मनुष्यों में दाढ़ी-मूछों का होना एक भारी हानि होगी। नाक से छोड़ी हुई सांस में मौजूद जलवाष्प तब तक उनकी दाढ़ी पर जमती जाएगी जब तक कि उनके चेहरे पर हिमलम्ब (icicle) यानी लटकते-जाते जमते-जाते बर्फ़ का एक अच्छा खासा सेहरा नहीं बन जाता। शायद यही वह कारण है जिससे कि सबसे अधिक ठंडे जलवायु में रहने वाले ऐस्किमो में दाढ़ी के नाम पर बस मामूली-से बाल होते हैं और प्रायः इतने भी नहीं होते।

लेकिन निश्चय ही इस चीज़ से इस बात का स्पष्टीकरण नहीं होता कि उदाहरणतः अफ्रीकनों अथवा एशियनों की अपेक्षा यूरोपियनों के अधिक बाल क्यों होते हैं। इस प्रश्न का उत्तर कदाचित् 'न' में होगा। दुनिया के अत्यधिक ठंडे क्षेत्रों में बालों का ज़्यादा-से-ज़्यादा समाप्त होना काफ़ी तर्कसंगत लगता है—क्योंकि दाढ़ी पर लटकती हुई जमी बर्फ़ न केवल अत्यन्त असुविधाजनक होगी वरन् उससे गम्भीर तुषाराघात (frostbite) का भी खतरा हो सकता है। संसार के अत्यधिक गर्म प्रदेशों में अधिक शारीरिक बालों से तो बस अधिक गर्मी ही पैदा होगी—ठीक उसी तरह जैसे कि टी-कोज़ी चायदानी के भीतर के पानी को गर्म बनाए रखती है। यदि इन बालों के बीच-बीच खाली जगह न हो तो पसीने के सरलता से वाष्पित होने में बाधा पड़ेगी और इस तरह मानव का ठंडा करने वाला सर्वोत्तम उपकरण बेकार हो जाएगा।

लेकिन शीतोष्ण प्रदेशों में जैसे कि यूरोप में कोई ऐसा उचित कारण नज़र नहीं आता कि वहाँ के लोगों में अपेक्षाकृत बाल ज़्यादा न हों (लैंगिक वरण से सम्बन्धित बालों को छोड़कर) यूरोप के मानव के बाल होते हैं जो कदाचित् सिर्फ़ इसलिए हैं कि क्यों न हों!

परन्तु हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि शायद यूरोपीयन के शरीर पर बालों का होना मात्र संयोग की ही बात हो। कुछ समय पूर्व नार्वे में एक बच्चे का जन्म हुआ जिसके सिर के बाल बहुत ही ज़्यादा घुँघराले थे—उतने-उतने ही घुँघराले जितने कि अफ्रीकनों के होते हैं। ऐसा होने का कोई प्रकट कारण नज़र नहीं आता था—उसके माता-पिता के बाल सामान्य यूरोपीय प्रकार के बाल थे, और उसके दादा-दादियों या नाना-नानियों और यहाँ तक कि उनके भी अपने-अपने माता-पिताओं के बाल सामान्य ही थे। जो कुछ हुआ था वह बस एक आनुवंशिक घटना ही थी और जैसा हम कह चुके हैं ऐसी ही घटनाओं को म्यूटेशन कहते हैं। अब आकर नार्वे में एक ऐसा परिवार है जिसके सब सदस्यों में घुँघराले बाल हैं। चूँकि घुँघराले बालों के लक्षण से सम्बद्ध लोगों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती, इसलिए घुँघराले बालों वाला परिवार बढ़ता गया है। इसमें सन्देह नहीं है कि प्राचीन काल में मनुष्य के कुछ लक्षण इसी तरह परिवर्तित हुए हैं—यानी आनुवंशिक घटना के

द्वारा जिसे म्यूटेशन कहते हैं, बाद में इन परिवर्तनों पर कोई 'वरणात्मक लाभ' की कोई क्रिया नहीं हुई। लोगों के बाल कम हैं या ज्यादा, यह बात शायद बस इसी प्रकार की एक विभिन्नता के कारण ग्राई होगी।

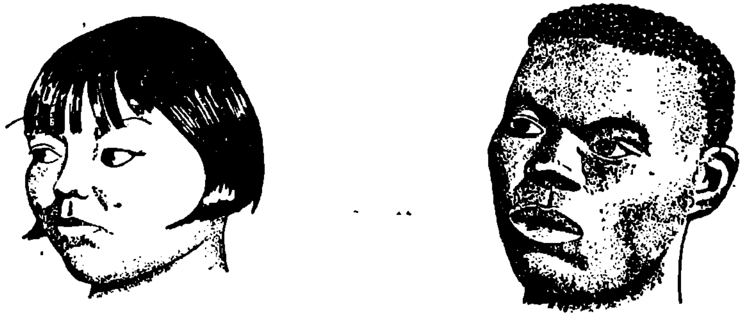
नार्वे के परिवार की कहानी से मानव में होने वाले एक ग्रौर परिवर्तन का उदाहरण मिलता है—बालों की ग्राकृति का परिवर्तन। बाल दो स्पष्ट प्रकार के होते हैं—सीधे ग्रौर घुंघराले। जैसा कि मानव की ग्रन्य विभिन्नताग्रों में पाया जाता है। बालों की इन दो सीमाग्रों के बीच भी ग्रनेक क्रमिक भेद पाए जाते हैं। अंग्रेजों के बाल सीधे ग्रौर घुंघराले का मिश्रण हैं, ग्रौर यही बात ग्रधिकतर ग्रन्य यूरोपियनों के बारे में भी है। मगर ग्रफ्रीका के नीग्रो के बाल बहुत भिन्न होते हैं, वे प्रायः छोटे-छोटे छल्लों के रूप में इंठे हुए होते हैं। हाटेनटॉट जैसी कुछ ग्रफ्रीकी जनजातियों में बालों के इन छल्लों के बीच-बीच बिना बाल वाली काफ़ी खाली जगह बची होती है जो देखने में बड़ी विचित्र-सी लगती है (प्लेट 8, 9 तथा 11)।

न्यूगिनी तथा उसके इर्द-गिर्द के द्वीपों में रहने वाले लोगों में कुछ भिन्न प्रकार के घने घुंघराले बाल पाए जाते हैं जिन्हें फ़िज़्ली (frizzly) कहा जाता है। इन 'महासागरी' नीग्रो लोगों का पुराना इतिहास ग्रफ्रीकी नीग्रो लोगों के इतिहास से भिन्न है—हो सकता है ये लोग प्रारम्भिक पिग्मी नीग्रो लोगों तथा लहरदार बालों वाली एक ग्रास्ट्रेलियाई जाति के बीच का मिश्रण रहा हो। ग्रगर ऐसा ही रहा होगा तो शायद फ़िज़्ली 'महासागरीय' बालों के होने का उत्तर मिल जाता है—क्योंकि ये बाल लहरदार ग्रौर छल्लेदार बालों का एक मिश्रित प्रकार है (छोटे छल्लेदार यानी 'किंकी' प्रकार के बालों का नमूना प्लेट 6 में दिखाया गया है)।

जान पड़ता है कि जलवायु के लिए ग्रनुकूलन की दिशा में बालों की ग्राकृति का कुछ निश्चित महत्व है। उदाहरण के लिए, बहुत घने छल्लेदार बालों में उनके छल्लों के बीच काफ़ी-काफ़ी हवा बन्द होती है। इस बन्द हवा से सिर से ऊपर का भाग धूप की सीधी किरणों की गर्मी से बच जाता है, क्योंकि हवा तापरोधी का काम करती है। उष्णकटिबंधों में रहने वाले यूरोपीयन लोग पिथ का बना हैट ग्रोढ़ते हैं ग्रौर ये हैट भी ठीक उसी तरह तापरोधी के रूप में सुरक्षा प्रदान करते हैं। बहुत ज्यादा ऐंठे हुए छल्लेदार बालों के बीच-बीच जब काफ़ी चौड़ी गंजी-जैसी खाली-खाली जगहें होती हैं तो उनसे भी सिर की सुरक्षा होती है क्योंकि उन जगहों से पसीना उड़ता ग्रौर ठंडक पदा होती है।

ग्रन्त में, जिस प्रकार खाल में तरह-तरह के ग्रनेक रंग पाए जाते हैं उसी प्रकार बालों में भी ग्रनेक रंग पाए जाते हैं। खाल की तरह बालों में भी मीलैनिन ही सबसे महत्व का वर्णक है। गहरे ग्रथवा काले रंग के बालों में बहुत-सा मीलैनिन होता है ग्रौर हल्के भूरे ग्रथवा सुनहरे (ब्लाण्ड) बालों में बहुत कम मीलैनिन होता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ बहुत से लोगों में बालों के लिए मीलैनिन की सप्लाई की

क्षमता समाप्त हो जाती है और उनके बाल सफ़ेद होने लगते हैं, हालांकि आपने ध्यान दिया होगा कि कुछ लोगों में काफ़ी कम उम्र में भी बाल सफ़ेद होने लगते हैं। खाल के रंग के बारे में आपने देखा था कि यह रंग दो और बातों पर निर्भर करता है—एक तो खाल में से रक्त-वाहिनियों के झमकने की मात्रा पर और दूसरे इस बात पर



चित्र 6. यहाँ दो चरम सीमाओं के बाल दिखाए गए हैं—बाईं ओर एक चीनी बालिका के लम्बे और बिल्कुल सीधे बाल हैं और दाहिनी ओर अफ्रीकी नीग्रो के बहुत ज्यादा कसे छल्लेदार बाल हैं।

कि खाल के द्वारा प्रकाश का प्रकीर्णन किस प्रकार हो रहा है। लेकिन बालों के रंग के बारे में ये बातें लागू नहीं होतीं। इस कारण कुछ बातों में बालों के रंग का अन्वेषण खाल के रंग के अन्वेषण की अपेक्षा अधिक सरल हो जाता है। मगर ऐसा होते हुए भी हमें ठीक-ठीक पता नहीं कि बालों का रंग कैसे आता है या कि बालों के रंग की वंशागति कैसे होती है। आज भी हम ठीक-ठीक पूर्व-घोषणा नहीं कर सकते कि किसी माता-पिता की सन्तान के बालों का रंग क्या होगा। दूसरे शब्दों में, हमें इस समस्या की आनुवंशिकी की उतनी अच्छी जानकारी नहीं है जितनी कि मानव के कुछ अन्य विभेदों की जैसे कि रक्त-समूहों की आनुवंशिकी की जिसका उल्लेख छठे अध्याय में किया जाएगा।

यह ठीक है कि बालों के काले से लेकर सुनहरे (ब्लाण्ड) तक के सभी रंग मीलैनिन से बनते हैं, लेकिन बालों का लाल होना एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार के रसायनों के द्वारा होता है जिन्हें फ़ीओमीलैनिन (pheomelanin) कहते हैं और ये भी मीलैनिन के ही एक सम्बन्धी वर्ग हैं। ये वर्णक लाल-लाल होते हैं और मीलैनिन की तरह इनका निर्माण भी मीलैनिन-कोशिकाओं के ही भीतर होता है। फ़ीओ-मीलनिन होने पर वर्णक की वास्तविक कणिकाएँ अलग आकृति की होती हैं जैसा कि आप प्लेट 10 में देख सकते हैं। मीलैनिन की कणिकाएँ लम्बी और अण्डाकार होती हैं जबकि फ़ीओमीलैनिन की कणिकाएँ गोल-गोल-सी होती हैं।

प्रश्न उठता है कि समस्त संसार में बालों के रंग का वितरण किस प्रकार पाया जाता है ? पहली बात तो यह है कि अगर खाल काली होगी तो बाल भी काले होंगे—और यह आशा के अनुकूल ही होगा क्योंकि ये दोनों ही रंग एक ही पदार्थ मीलैनिन के कारण बनते हैं। संसार की अधिकतर जातियों में गहरे भूरे अथवा काले बाल होते हैं, सिर्फ़ उत्तरी मेघाच्छादित क्षेत्रों में जैसे कि यूरोप में बाल अपेक्षाकृत हल्के रंग के होते हैं। स्कैंडिनेविया के लोग तो खास तौर से लोरे या सुनहरे बालों के लिए प्रसिद्ध हैं, लेकिन इस विषय में हम कोई उतना कड़ा नियम नहीं बना सकते जितना कि खाल के रंग के बारे में बना सकते हैं। किसी अंग्रेज की खाल साधारणतया हल्के ही रंग की होती है लेकिन उसके बाल गहरे काले रंग के हो सकते हैं और हल्के रंग के भी। कुल मिलाकर बस हम यह कह सकते हैं कि दुनिया के अन्य देशों की अपेक्षा उत्तरी देशों में सुनहरे (ब्लाण्ड) बालों की प्रतिशतता अधिक पाई जाती है।

अतः ऐसी कम सम्भावना मालूम पड़ती है कि विभिन्न जलवायु के लिए अनुकूलन की दिशा में बालों के रंग का भी कोई महत्व है। अधिक सम्भावना तो यही है कि बालों का रंग किसी-न-किसी रूप में खाल के रंग के ही परिणामस्वरूप होगा। स्वयं अपने-आपमें बालों का रंग एक ऐसी विभिन्नता नहीं है जो मनुष्य में अपने बाहरी जलवायु के लिए एक सफल अनुकूलन के रूप में पैदा हुई हो।

इंग्लैंड के वैज्ञानिकों ने स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर की सहायता से बालों के रंग के ऊपर कुछ बहुत ही रोचक अध्ययन किया है। उन्होंने देखा कि वेल्स में काले रंगों की प्रधानता है और पूर्वी ऐंग्लिया में अधिकतर हल्के रंगों के बाल पाए जाते हैं। यहाँ यह बताना बड़ा रोचक होगा कि वेल्स का सेल्ट लोगों (Celts) से गहरा सम्बन्ध है—सेल्ट लोग अपेक्षाकृत अधिक दक्षिणी ऐल्पाइन क्षेत्रों से आए थे। मगर पूर्वी ऐंग्लिया पर समुद्री डाकुओं (वाइकिंगों) के विशाल दलों ने आक्रमण किया और ये लोग स्कैंडिनेविया से आए हुए थे और निस्संदेह सेल्टों की अपेक्षा ज्यादा गोरे थे। लेकिन मानव-विज्ञानियों के सामने ऐसे कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं जिन पर वे इन सम्बन्धों को आधारित कर सकें, हालांकि अन्य लोगों को इस प्रकार की अटकलें लगाने की पूरी छूट है, और वास्तव में ये अटकलें मानव-विज्ञान की भी रोचक कल्पनाएँ तो हैं ही, भले ही वे विज्ञान के दायरे में न आती हों।

वैज्ञानिकों ने यह भी दर्शाया है कि लाल रंग के बाल सबसे ज्यादा वेल्स, स्काटलेंड, सीमांत काऊंटी तथा पूर्वी ऐंग्लिया में पाए जाते हैं। जिन लोगों को ब्रिटिश इतिहास की अच्छी जानकारी है वे लोग इस तथ्य के बारे में अपनी निजी अटकलें लगाना चाहेंगे और लगा सकते हैं!

4. ठंड का असर न होने देने वाले चेहरे

लगभग पचास हज़ार वर्ष पहले अन्तिम हिमयुग के विशाल हिमनदों (ग्लेशियरों) ने पहली बार सरकना-फिसलना शुरू किया। धीरे-धीरे रास्ता काटते-काटते दक्षिणी दिशा में बढ़ने लगे और जैसे-जैसे वे चलते गए वे धरती की धरातल पर बड़ी-बड़ी वादियाँ काटते गए। तापमान गिरता गया, वनस्पति मर गई और वे क्षेत्र जो किसी समय हल्के गर्म और धूप से खिले रहने वाले थे अब मात्र बर्फ़ के उजाड़ रेगिस्तान बन गए।

उत्तर-पूर्वी एशिया के ऊपरी भाग साइबेरिया में शिकारी लोग फंसकर रह गए—क्योंकि दक्षिण की ओर आने के लिए उनके पास बस एक ही मार्ग था और वह था पर्वतीय हिमनदों की एक अभेद्य शृंखला। सौभाग्य से ये शिकारी लोग बहुत ही कुशल और चतुर शिकारी थे, और कदाचित् बहुत पहले ही यहाँ तक कि पच्चीस हज़ार वर्ष पहले वे ठंड से निबटने के लिए बहुत निपुण हो चुके थे। क्योंकि हिम-नदों के युगों के बीच के कालों में भी साइबेरिया बहुत ही ठंडा था (और अब भी है)।

इसके बावजूद अब जो परिस्थितियाँ इन्हें झेलनी पड़ीं वे मानो बर्दाश्त की हद थीं। तुषाराघात (frostbite) ने लोगों की जानें लीं और इसी तरह कड़े मौसम से सम्बन्धित रोगों ने भी अपना हिस्सा न छोड़ा। लेकिन साइबेरियन शिकारियों के हित में एक बात थी कि उनका एक अलग-थलग समूह बन गया था—कहने-सुनने में यह बात उचित-सी नहीं लगती मगर वास्तव में थी लाभदायक। जो लोग संयोग से ठंड के लिए भली-भाँति अनुकूलित थे वे बचकर नहीं भाग सके और इस प्रकार उनके अनुकूलन उनकी सन्तानों में पहुँच गए। ये सन्तानें उन्हीं स्थानों पर रहती रहीं। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक वरण की क्रिया अधिक तीव्र गति और तीव्र शक्ति से हुई—काश डार्विन महोदय इस परिवर्तन को स्वयं अपनी आँखों से देख रहे होते, यदि ऐसा होता तो निस्संदेह उनका हृदय आनन्द से भर गया होता।

शरीर के जिस अंग पर तुषाराघात का सबसे पहला प्रभाव पड़ता है वह है नाक, और यह नाक इन लोगों में चपटी हो गई। इसी प्रकार माथा भी चपटा हो गया। गाल बहुत चौड़े हो गए तथा गर्माहट बनाए रखने के लिए उनमें चर्बी की मोटी परत की गद्दियाँ बन गईं। वास्तव में देखा जाए तो उनका सारा ही चेहरा ज़्यादा मोटा-मोटा हो गया। उनकी पलकों में चर्बी की परत बन गई जिससे उनकी

इन आंखों को हिमांधता (snow blindness) तथा हिमाघात दोनों ही से सुरक्षा मिली। निस्संदेह सर्दी से बचने के लिए चर्बी एक बहुत ही अच्छे तापरोधी (insulater) का काम करती है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि चर्बी की एक सेंटीमीटर मोटी परत उतनी ही गर्म होती है जितना कि ठंड बचाने वाले पूरे कपड़ों के सेट से गर्मी मिलती है।

इन लोगों में नाक के नथुने भी ज्यादा संकरे हो गए और इस तरह सांस से भीतर ले जाने वाली हवा को फेफड़ों में पहुँचने से पहले गर्म हो सकने के लिए एक ज्यादा अच्छा अवसर मिला। फेफड़ों में यदि ठंडी हवा चली जाए तो हो सकता है कि उससे श्वसनिकाओं (bronchi) में गड़बड़ी हो जाए तथा मृत्यु भी हो सकती है। गालों के ऊपर की ओर भीतर बने साइनस (sinus) अब चर्बी की एक मोटी परत के द्वारा ज्यादा सुरक्षित थे और इस प्रकार साइनसों के संक्रमण (infection) अब कम हो गए।

संक्षेप में कह सकते हैं कि साइबेरिया के शिकारी का चेहरा ठंड के लिए पूरी तरह अनुकूलित हो गया था। मानव-विज्ञानियों का कहना है कि अगर आप किसी ऐसे चेहरे का नमूना तैयार करना चाहें जो भीषण ठंड को सह सकने योग्य हो तो अंत में आपको मंगोल जाति के लोगों के जैसे चेहरे की आकृति प्राप्त होगी। जिन लक्षणों का मैंने अभी वर्णन किया है वे जिन लोगों में पाए जाते है उन्हें मंगोलरूपी (Mongoliform) का ही नाम दिया जाता है।

जब हिमनद पिघलने शुरू हुए और जलवायु पुनः गर्म होने लगी तब मंगोलरूपी लोगों का प्रसार शुरू हुआ। जो लक्षण ठंड में इतने ज्यादा लाभप्रद थे वे उष्णतर प्रदेशों में भी नुक़सान देने वाले सिद्ध न हुए। एक मानव-विज्ञानी के शब्दों में मंगोलरूपी चेहरा 'निर्यात ने लिए आदर्श' था। समय बीतने के साथ-साथ इस प्रकार के चेहरे वाले लोग और-तो-और, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक में पहुँच गए। आज भी दूर दक्षिण में यहाँ तक कि बोर्नियो में रहने वाले लोगों के चेहरे मूल मंगोलरूपी चेहरों के समान होते हैं। लेकिन मंगोलरूपी चेहरे का आज का सर्वोत्तम उदाहरण ऐस्किमो हैं—ये लोग अब भी उत्तरध्रुवीय परिवेश में रहते हैं (प्लेट 12 से 15 तक)।

अमरीका में मानव का स्वतंत्र रूप से विकास सम्भव नहीं था, इसलिए अवश्य ही वह हज़ारों वर्ष पूर्व एशिया महाद्वीप से पार करके अमरीका पहुँचा होगा। यह यात्रा निश्चय ही उसने बेरिंग जलडमरुमध्य पार करके की होगी, आज यह जलडमरुमध्य अमरीका और एशिया के बीच कोई अस्सी किलोमीटर का फ़ासला है। और-तो-और, इतने-से फ़ासले के बीच भी कई द्वीप हैं, और इन द्वीपों के बीच का फ़ासला भी ज्यादा-से-ज्यादा चालीस किलोमीटर होगा—एक ऐसा फ़ासला जो डोवर तथा कैले के बीच इंग्लिश चैनेल के फ़ासले से ज्यादा नहीं है। आज हमें मालूम है

कि महान् हिमनदों के काल में महासागरों के जल का स्तर काफ़ी नीचे चला गया होगा। बेरिंग जलडमरूमध्य 30 मीटर से कम ही गहरा है इसलिए हिमयुगों में इन दो महाद्वीपों के बीच कदाचित् एक थल-सेतु (land-bridge) रहा होगा। इसी पुल से पार करके अमरीका में सबसे पहले बसने वाले पहुँचे—यानी मूल 'अमरीकी इंडियन' पहुँचे थे। लेकिन अमरीका के मूल निवासियों में, यानी अमरीकी इंडियनों में (न कि बाद में जाकर बसने वाले स्पेनवासी या अंग्रेज़ लोगों में) मंगोल प्रकार का वह विशेषित चेहरा नहीं पाया जाता जो हम समझते हैं कि पच्चीस हज़ार वर्ष पूर्व बनता जा रहा था। इसका यह मतलब हुआ कि सबसे पहले के अमरीकन या तो मंगोलरूपियों के पूर्ण विकास होने के पहले ही साइबेरिया से पार करके वहाँ पहुँच गए होंगे, या फिर दूसरी सम्भावना यह है कि वे दो जातियों के मिश्रण से बने होंगे जिनमें से एक जाति विशेषित मंगोलरूपियों की रही होगी। सही बात का मानव-विज्ञानियों को आज भी पता नहीं है। परन्तु सौभाग्य से उत्तरी कनाडा अथवा अलास्का में एक सचमुच प्राचीन जीवाश्म यानी फ़ॉसिल (fossil) मिला है जिससे हो सकता है कि सारी समस्या सुलझ जाए।

दुनिया की अन्य किसी भी जाति के लोगों में वातावरण के लिए चेहरे में इतना अच्छा अनुकूलन नहीं पाया जाता जितना कि एशियनों में और उनमें भी विशेषत: एस्किमो लोगों में। एशियाई चेहरा चौड़ा होता है लेकिन नीग्रो में अधिकतर काफी संकरा या लम्बा-सा होता है—नीग्रो को उस सारे चर्बी के बचाव की ज़रूरत नहीं होती जो कि अन्यथा एस्किमो के लिए इतना अधिक महत्व का होता है। यूरोप में चेहरे चौड़े भी होते हैं और लम्बे भी—कोई सामान्य नियम नहीं होता जान पड़ता। अमरीका में जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं लोगों में मंगोलरूपी प्रकार के चेहरे से कुछ सामान्य समानताएँ तो पाई जाती हैं लेकिन उसकी विशेषता एक भी नहीं पाई जाती। लेकिन अमरीका में जितना भी आप ज़्यादा-ज़्यादा दक्षिण में जाएँगे उतना वहाँ के देशज निवासियों का चेहरा एशियाई चेहरे से अधिकाधिक मिलता जाता है।

सिर की वास्तविक आकृति का भी मानव-विज्ञानियों ने काफ़ी विस्तार से अध्ययन किया है। सारी दुनिया में उन्होंने उस एक चीज़ को मापा है जिसे शिर-सूचांक (cephalic index) कहते हैं—यह सिर की लम्बाई के साथ सिर की चौड़ाई का अनुपात है। नीग्रो के सिर लम्बे और पतले दिखाई पड़ते हैं, एशियनों का सिर चौड़ा और मोटा होता है, तथा यूरोपियनों का सिर लगभग हर आकृति और साइज़ का पाया जाता है।

मानव-चेहरे के सम्बन्ध में एक और बहुत उलझन पैदा करने वाली समस्या है—नीग्रो में जबड़ों और होंठों का आगे को निकला होना जिसे पूर्वहनुता अथवा प्रोग्नैथिज़्म (prognathism) कहते हैं। नीग्रो के इस लक्षण को आप प्लेट 11 में

दर्शाई गई एक नाइजीरियन बालिका की फ़ोटो में देख सकते हैं। कोई नहीं जानता कि यह लक्षण क्यों है अथवा इसका लाभ क्या है। हां, एक बात यह ज़रूर याद रखने की है कि एक ज़माना था जब लोग सोचा करते थे कि नीग्रो एक हीन जातीय वर्ग है—ऐसा वे इसलिए कहते थे क्योंकि नीग्रो लोग दुनिया की बाक़ी जातियों की अपेक्षा वानरों से ज्यादा मिलते-जुलते लगते थे। लेकिन इस तर्क में जो एक बड़ी गलती नज़र आती थी वह यह थी कि नीग्रो लोगों के होंठ अधिक मोटे होते हैं जब कि दूसरी ओर वानरों या कपियों में होंठ बहुत ही संकरे होते हैं या यूं कहें कि लगभग होते ही नहीं। नीग्रो लोगों में निश्चय में बहुत बड़े और भरे-पूरे होंठ होते हैं।

आंखों के रंग का स्पष्टीकरण अपेक्षाकृत सरल है। अधिकतर लोगों में गहरी भूरी अथवा काली आंखें होती हैं। मगर यूरोपियनों में हल्के रंग की आंखें होती हैं जिनमें हरी, नीली अथवा धूसर रंग के विभेद अक्सर पाए जाते हैं। ज़ाहिर है कि काले वर्णक से आंख की नाज़ुक रेटिना (retina) यानी दृष्टिपटल की तेज़ धूप के प्रति सुरक्षा होती है। यदि किसी कैमरे में लेन्स में से होकर बहुत ज्यादा रोशनी भीतर प्रवेश करे तो फ़िल्म अति-आभासित (over-exposed) होकर बेकार हो जाती है। आंख की भी यही बात है। हल्के रंगों की आंख वाले लोगों को न केवल गर्म और तेज़ धूप वाले स्थानों पर ही काले चश्मे लगाने चाहिए बल्कि ठंडी और चटक धूप वाले स्थानों जैसे कि स्की खेल के ढालान और उत्तरी ध्रुव के बर्फ़ीले मैदानों में भी लगाने चाहिए।

मंगोलरूपियों का एक और विभेदक लक्षण है जिसका हमने अभी तक उल्लेख नहीं किया है। उनकी ऊपरी पलक में मांस का एक अतिरिक्त वलन होता है जो स्वयं पलक के ऊपर को लटकता रहता है—इसे आप सामने वाले चित्र में देख सकते हैं। इस वलन को **एपिकैंथिक वलन** (epicanthic fold) कहते हैं। अक्सर यह वलन इतना बड़ा होता है कि यह ऊपरी पलकों के बालों तक को लगभग पूरी तरह ढक लेता है। यह वलन ठंड और धूप की चमक दोनों ही से बहुत ही अच्छी सुरक्षा करता है।

अभी तक मैंने चेहरे और सिर की इस तरह से बात की कि मानो ये दोनों अलग-अलग चीज़ें हैं। सामान्यतः इनकी आकृतियां एक-दूसरे से सम्बन्धित तो हैं ही, चौड़े चेहरे वाले लोगों में प्रायः चौड़े सिर होते हैं और लम्बे चेहरे वालों में प्रायः लम्बे और संकरे सिर होते हैं। ऐसे चेहरों और सिरों की आकृतियों को समसंगत (harmonic) यानी सुमेल कहते हैं। लेकिन इस विषय में कुछ बड़े ही रोचक अपवाद भी हैं। उदाहरण के लिए, ऐस्किमो का चेहरा विषमसंगत (disharmonic) यानी बेमेल होता है—ऐस्किमो में सिर लम्बा और चेहरा चौड़ा होता है।

इससे भी ज्यादा रोचक लोग बास्क (Basques) नामक जाति के होते हैं जो पाइरिनीस (Pyrenees) में रहते हैं। वास्तव में हमें नहीं मालूम कि ये लोग कहां से आए हैं। कुछ का कहना है कि ये भूमध्यसागर के पूर्वी सिरे से आए हैं

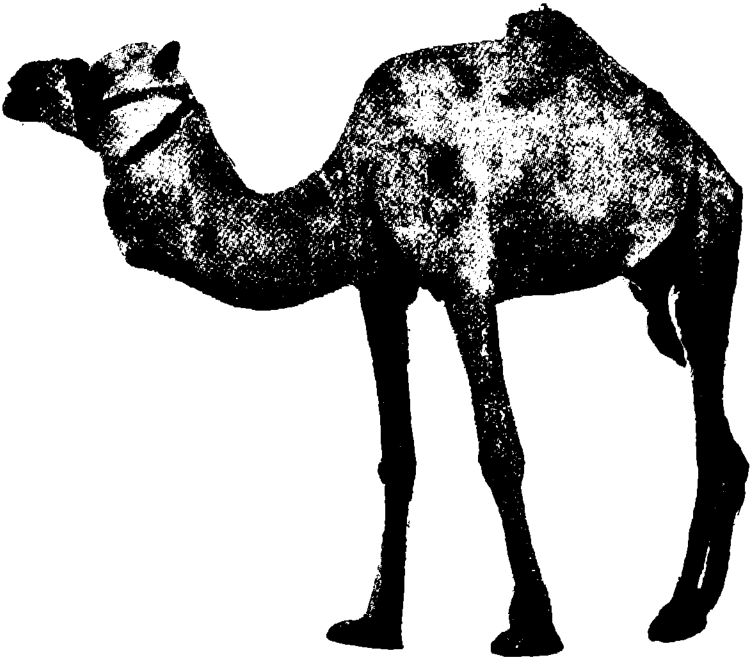


16. गोरे आदमी को कड़ी ठंड में भारी बचाव की आवश्यकता होती है।



17, 18. ब्राजील के लोगों (बाएं) और आस्ट्रेलिया के आदिवासियों (नीचे) में औसत से कम चयापचय (मेटाबोलिक) दर होती है—गर्मी से सुरक्षा का एक साधन भी है।



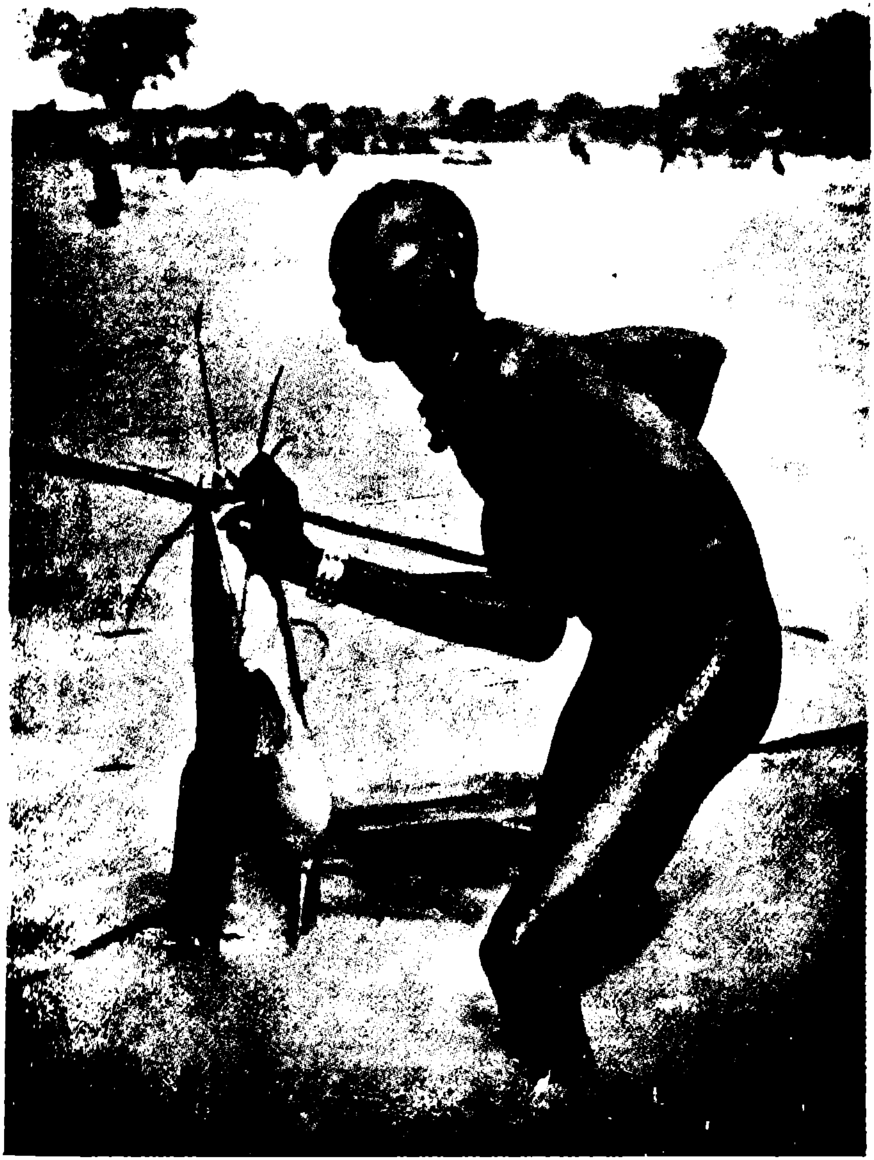




19, 20. मरुस्थलीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलन । हाटेनटाट स्त्री में चर्बी भरे उभरे नितम्ब दिखाई पड़ रहे हैं जो ऊँट के कूबड़ के तुल्य कहे जा सकते हैं ।



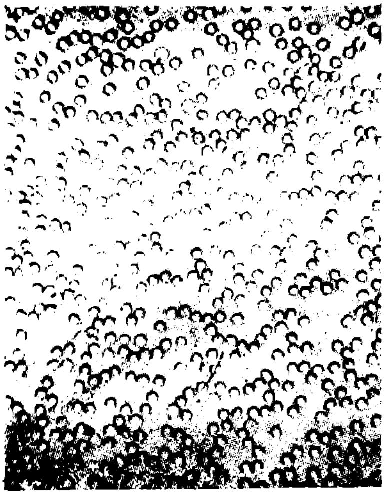
21. इंग्लिश चैनेल के एक तैराक के लिए चर्बी की परतें ठंड से बचने का सबसे अच्छा साधन है।

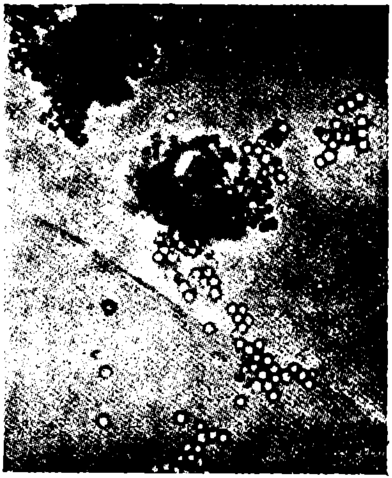


22. सूडान का डिंका नीग्रो लम्बा और पतला होता है, उसके शरीर की आकृति तीव्र गर्मी में रहने के लिए अनुकूलित होती है ।

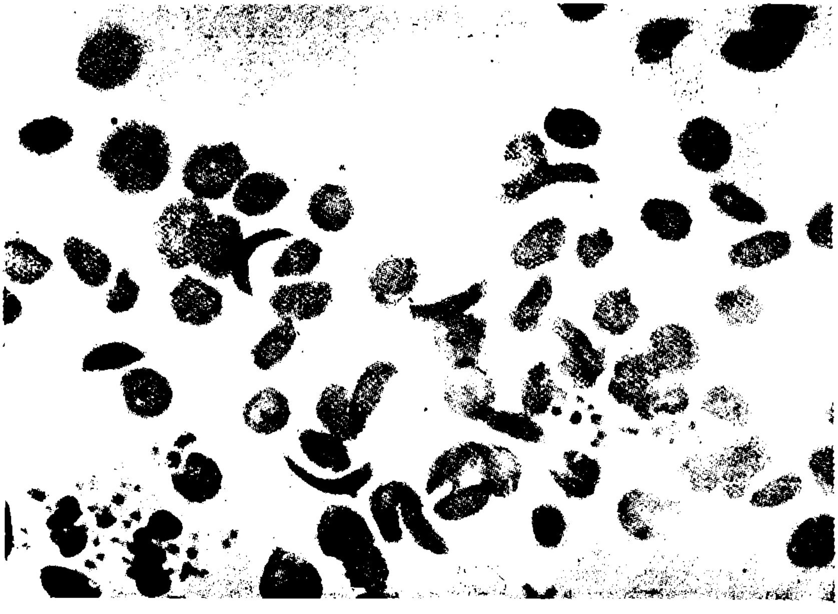


23. पिग्मी लोग बाक़ी नीग्रो से केवल कद में भिन्न होते हैं। मानव-विज्ञानियों को उनके छोटे होने का कारण मालूम नहीं है, लेकिन निस्संदेह उनका यह छोटा कद उन्हें जंगल में शिकार का पीछा करने में सहायक होता होगा।





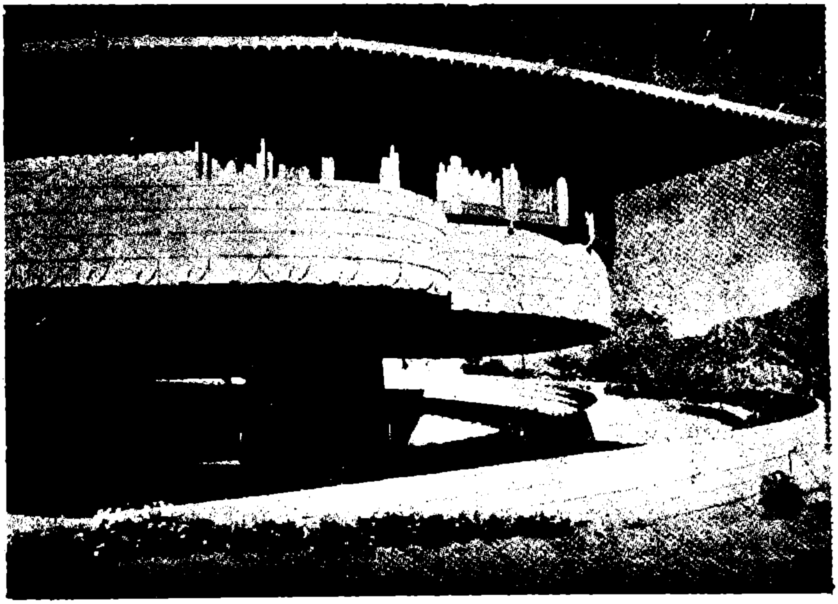
24. सामान्य रक्त कोशिकाएँ 25. 'चिपक गई" रक्त कोशिकाएँ



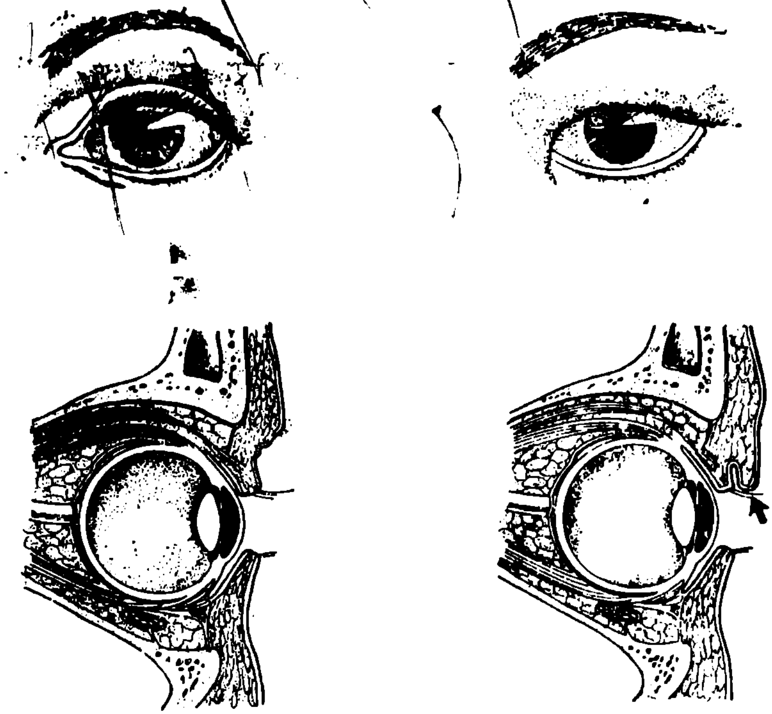
26. हँसिया कोशिकाएँ ।



27, 28. मानव अब मात्र जलवायु के सहारे नहीं रहा है। ऊपर : दक्षिण ध्रुव प्रदेश में एक अमरीकी पड़ाव। नीचे : एरिजोना के रेगिस्तान में ऐश की जिंदगी।



और किसी तरह पाइरिनीस के पास फंस गए, हो सकता है कि शायद बिस्के की खाड़ी (Bay of Biscay) में उनके जहाज की दुर्घटना हो गई हो।



चित्र 7. मंगोलरूपी का एपिकैंथिक वलन (बाईं ओर) जो अक्सर ऊपरी पलक के बालों को छिपाए रखता है—यह वलन आंख को ठंड और तेज रोशनी दोनों ही से बचाता है।

चाहे तो बास्क लोगों की इस तरह जहाज दुर्घटना हो गई हो, या चाहे वे बहुत पहले की किसी और जाति के मात्र उत्तरजीवी बचे हों। एक बात स्पष्ट है कि ये लोग एक हज़ार वर्ष से अधिक समय से शेष संसार से बिल्कुल अलग-थलग तथा अप्रभावित रहे हैं। इनकी भाषा सबसे अलग है—न वह यूरोप की किसी भाषा से और न ही एशिया की किसी भाषा से जोड़ी जा सकती है। इनके सिर और चेहरे विषमसंगत हैं—इनके सिर चौड़े होते हैं तथा चेहरे लम्बे और पतले। ये एक अत्यन्त ही रोचक और चकित कर देने वाली जाति है। कारण यह कि मानव-विज्ञानी तथा भाषा-विशेषज्ञ दोनों ही इस जाति के न तो इतिहास को ढूंढ पाए हैं और न ही इनके पूर्वजों का पता लगा पाए हैं। बास्को के बारे में हम पुनः छठे अध्याय में चर्चा करेंगे।

5. जलवायु के अनुसार शरीर का ढलना

डार्विन को उसकी लम्बी समुद्र-यात्रा में जिस जाति ने शायद सबसे ज़्यादा आकर्षित किया वे यघन लोग (Yaghans) थे। ये लोग दक्षिण अमरीका की अंतिम दक्षिणी नोक पर तिएरा डेल फ़्यूगो में रहते थे। इस स्थान का ताप लगभग सदैव ही क़रीब-क़रीब जमाव-बिंदु के समीप रहता है। इस सब के बावजूद वे लोग लगभग बिना वस्त्र पहने अपनी डोंगियों (canoes) को धुंध-भरे जलमार्गों में से खेते जाते थे। डार्विन देखकर हैरान हो गया कि यघन जाति की माँ जब अपने बच्चे को स्तनों से दूध पिला रही होती है तब हवा में उड़ती हुई बर्फ़ उसके शरीर पर गिरकर पिघलती जाती है—और यह भी देखकर हैरान हुआ कि इतनी बर्फ़ीली ठंड में जब यघन लोग कभी आग के समीप जाते तो किस तरह उन्हें पसीना आने लगता था।

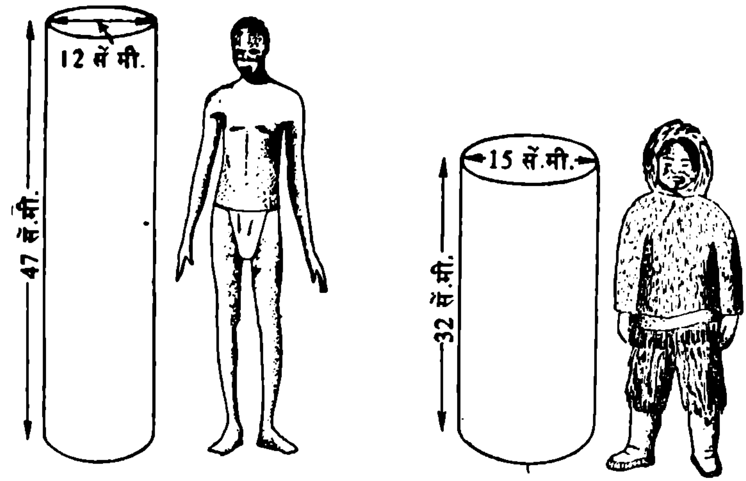
दुनिया में और भी ऐसी अनेक प्रजातियाँ हैं जो बिना गर्म कपड़े पहने अथवा बिना तीव्र व्यायाम करते हुए तेज़-से-तेज़ सर्दी को सहन करते हैं। अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के मरुस्थलों में रहने वालों को हालांकि दिन में तो अच्छी-खासी गर्मी सहन करनी पड़ती है मगर रात में उन्हें पानी के जमाव-बिंदु से भी नीचे गिर जाने वाले ताप पर सोना पड़ता है। लेकिन वह इसके लिए कोई खास इंतज़ाम नहीं करते—बस पाँव की तरफ़ थोड़ी-सी आग जला लेते हैं और सिर तथा कंधों पर एक खाल का लबादा-सा ढक लेते हैं। इसी से उन्हें अच्छी नींद आ जाती है।

यह स्पष्ट है कि कुछ जातियों के लोग अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत ठंडी परिस्थितियों में जीते रह सकने के लिए ज़्यादा अच्छी तरह अनुकूलित होते हैं। मानव-विज्ञानी जानना चाहते हैं कि यह सब कैसे होता है—और इस विषय में काफ़ी-कुछ बातें समझ में आने लगी हैं।

इंग्लिश चैनेल को शौक़िया पार करने वाले तैराकों का सबसे बड़ा दुश्मन वहाँ का ठंडा ताप है। क़रीब 16° सेंटीग्रेड के पानी में किसी तैरने वाले ताल में झट से एक-दो डुबकी लगा लेना और बात है तथा इतने ही ताप पर समुद्र में बीस घंटे तक रहना और बात। लेकिन फ़ोटो-चित्रों में आपने देखा होगा कि कैले अथवा डोवर के तटों पर पानी में चलते-फिरते या घूमने वाले पुरुषों तथा महिलाओं में प्रायः ठंड से बचने का एक बहुत ही कारगर साधन है—वह है चर्बी की मोटी-मोटी परतें। लम्बी दूरी तक तैरने वाले के लिए 100-110 किलो का वज़न एक बहुत बड़ा लाभ है, कुछ लोग तो इससे भी ज़्यादा भारी होते हैं (प्लेट 21)।

प्रश्न उठता है कि क्या गर्म जलवायु के निवासियों की अपेक्षा ठंडी जलवायु में रहने वाले ज्यादा भारी होते हैं ? आइए, उत्तर से शुरू करके देखें। एस्किमो का औसत वज़न क़रीब 80 किलो होता है। उससे नीचे दक्षिण में आइरिश का वज़न क़रीब 75 किलो तथा स्पेनवासी का क़रीब 60 किलो होता है। भूमध्यसागर के दक्षिण में अल्जीरिया में रहने वाली बरबर (Berber) जाति के लोगों का औसत वज़न सिर्फ़ क़रीब 56 किलो होता है। ये आंकड़े बहुत से व्यक्तियों से लिए गए माप-तौल का मात्र औसत है, फिर भी पृथ्वी के एक भाग में जलवायु के साथ-साथ शरीर के भार में पाए जाने वाले अन्तर का इससे अंदाज़ा तो लग ही जाता है। एशिया और अमरीका में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है—यानी जलवायु जितनी गर्म होती जाएगी वहाँ के निवासी भी उतने ही हल्के होते जाएँगे।

एशिया में रहने वाले दो जन-समूह खास तौर से रोचक हैं—एक तो पौली-नीशियन (Polynesians) और दूसरे हिन्देशियाई (Indonesians)। ये दोनों जन-समूह एक-दूसरे से सम्बन्धित माने जाते हैं। पौलीनीशियन क़रीब 65 किलो भारी



चित्र 8. गर्म जलवायु में रहने वाले लोग लम्बे और पतले होते हैं जबकि ठंडी जलवायु में रहने वाले छोटे और मोटे होते हैं। नीग्रो के शरीर में अपेक्षाकृत अधिक पृष्ठ-क्षेत्रफल (surface area) होता है जिससे पसीना वाष्पित हो सकता है। ऐस्किमो में लम्बे पतले हाथ-पांव नहीं होते जिन पर अन्यथा आसानी से तुषाराघात हो सकता है।

होते हैं लेकिन उनके पड़ौसी हिन्देशियाई लोगों का वज़न लगभग 55 किलो होता है। इनके शरीर के भार का यह अन्तर इस प्रकार समझाया जा सकता है—पौलीनीशियन द्वीपसमूह सुहावनी हवाओं के द्वारा ठंडा बना रहता है जबकि हिन्देशियाई द्वीपों में

ठंडी हवाएँ नहीं पाई जातीं जिससे वे अपेक्षाकृत गर्म बने रहते हैं एवं इसी कारण वहाँ के निवासी वजन में हल्के होते हैं।

वजन में पाए जाने वाले इस अन्तर के अलावा हम आशा कर सकते हैं कि शायद आकृति में भी अन्तर पाया जाता हो। चित्र 8 में दिखाए गए दो सिलिंडरों की कल्पना कीजिए। एक सिलिंडर 12 सेंटीमीटर मोटा तथा 47 सेंटीमीटर लम्बा है, दूसरा सिलिंडर 15 सेंटीमीटर मोटा तथा 32 सेंटीमीटर लम्बा है। एक मामूली-से हिसाब लगाने से आपको तुरन्त पता लग जाएगा कि उन दोनों का वजन क़रीब-क़रीब बराबर है। लेकिन पहले सिलिंडर का पृष्ठ-क्षेत्रफल दूसरे सिलिंडर के क्षेत्र-फल का क़रीब छठा हिस्सा ज्यादा है। अतः लगभग बिल्कुल समान वजन वाले दो पिंडों के पृष्ठ-क्षेत्रफल अलग-अलग हो सकते हैं।

हमारे शरीर से गर्मी की हानि कई प्रकार हो सकती है जिनमें से दो ये हैं—पसीने के द्वारा और ऊष्मा (heat) के विकिरण के द्वारा। जाहिर है कि पसीना निकलने और विकिरण होने के लिए जितना ज्यादा क्षेत्रफल होगा हम अपने शरीर को उतना ही ज्यादा अच्छी तरह ठंडा कर पाएँगे। अधिक पृष्ठ-क्षेत्रफल गर्म प्रदेश में और कम पृष्ठ-क्षेत्रफल ठंडे प्रदेश में लाभप्रद होंगे। अतः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मानव उस लम्बे पतले सिलिंडर जैसा दिखाई देगा जैसा कि मैंने पीछे चित्र में बनाया है। उसका शरीर छरहरा और पतला होगा, भुजाएँ लम्बी और पतली, तथा गर्दन भी पतली और शोभायमान होगी। और-तो-और, उस व्यक्ति के शरीर के छोटे सिलिंडर यानी कि हाथ-पैरों की उंगलियाँ भी लम्बी और पतली होंगी।

लेकिन उत्तर में, विशेषकर उत्तरध्रुवीय प्रदेश में मनुष्य छोटा गोल-मटोल सिलिंडर जैसा होगा। उसकी भुजाएँ और टांगें शरीर के पास सटी-सी रहती हैं, और वे छोटी तथा मोटी होती हैं, शरीर मोटा-मोटा होता है। इस व्यक्ति का पृष्ठ-क्षेत्रफल न्यूनतम होता है। आप ऐस्किमो और नीग्रो के फ़ोटोचित्र प्लेट 1 तथा 22 में देख सकते हैं। नीग्रो क़द में ऐस्किमो से बड़ा होते हुए भी वजन में कदाचित काफ़ी कम होता है। इस प्रकार ऐस्किमो के शरीर से ऊष्मा की हानि कम-से-कम होती है और नीग्रो बिना बेहिसाब लम्बा हुए शरीर से अधिकाधिक ऊष्मा बाहर को छोड़ता है।

जंतुओं में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है जैसे कि ऊँट में। ऊँट रेगिस्तान के लिए अनुकूलन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी दो खास समस्याएँ हैं—एक तो गर्मी को अधिकाधिक कारगर ढंग से शरीर से बाहर छोड़ना चाहिए और दूसरे उतने ही कारगर ढंग से ऊर्जा तथा पानी को शरीर के भीतर संचित भी करना चाहिए। मनुष्य में भी ऊँट के कूबड़ के जोड़ की स्थिति पाई जाती है—इस स्थिति को स्टीएटोपिजिया (steatopygia) कहते हैं। इस स्थिति का अर्थ प्लेट 19, 20 वाली फ़ोटो में दर्शाई गई एक हाटेनटॉट स्त्री में स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। आप

देख सकते हैं कि इस स्त्री का पिछावा खास तौर से बहुत मोटा है। इस पिछावे में भरी चर्बी बहुत-सी अतिरिक्त ऊर्जा का मानो सुरक्षित भण्डार है, भोजन और पानी की कमी पड़ने पर जैसा कि प्राय: रेगिस्तान में हुआ ही करता है यह महिला इसी अतिरिक्त भण्डार पर निर्भर करती है। हाटेनटॉट व्यक्ति का जीवन आराम का नहीं है, लेकिन प्रकृति ने उसकी स्त्री को (और पुरुष को भी) ऊर्जा का एक ऐसा भण्डार प्रदान किया है जिस पर अकाल की आपात स्थिति में वह निर्भर करती है।

मगर हाटेनटॉट व्यक्ति की भुजाएँ और टांगें खास तौर से पतली होती हैं और उनका बड़ा पृष्ठ-क्षेत्रफल विकिरण एवं पसीने के वाष्पव के द्वारा उन्हें ठंडा बनाए रखने में सहायता करता है। हाटेनटॉट लोग दो विरोधी आवश्यकताओं के प्रति अनुकूलनों का एक सबसे अच्छा उदाहरण हैं—ये आवश्यकताएँ हैं एक तो ऊर्जा का भण्डार बनाए रखना और दूसरे अधिकाधिक गर्मी को शरीर से बाहर छोड़ने के लिए अधिकतर शरीर को पतला और लम्बा बनाए रखना।

यह देखने के लिए कि जलवायु के प्रति इस प्रकार के अनुकूलन कितने कारगर हैं वैज्ञानिकों ने बहुत से रोचक प्रयोग किए हैं। लेकिन इन प्रयोगों का वर्णन करने से पहले हमें यह महसूस कर लेना ज़रूरी है कि हो सकता है कि इनमें से कुछ अनुकूलन वास्तव में अनुकूलन ही न हों—वे बस ग्रहण किए हुए पोषण की मात्रा और उसके गुण-लक्षण पर निर्भर होते हुए ही प्रकट हुए हों। यदि यही बात है तो हो सकता है कि ये अनुकूलन एक सन्तति से दूसरी सन्तति में वंशागति द्वारा नहीं पहुँचेंगे।

उदाहरण के लिए जापानी लोग नाटे हुआ करते हैं। एक मानव-विज्ञानी ने जापान में रहने वाले जापानियों और हवाई में जाकर बस जाने वाले जापानियों की ऊँचाइयों का अध्ययन किया। इन अध्ययनों में उसने देखा कि मात्र एक ही पीढ़ी में हवाई में जाकर बसे जापानियों की ऊँचाई ज़्यादा हो गई थी—ऐसा अनुमानत: उत्तम भोजन के कारण हुआ। वास्तव में, वे तमाम लोग जिनका मुख्य आहार चावल होता है छोटे क़द के होते हैं जबकि अधिक पोषणयुक्त भोजन मिलने पर वे ही उससे अधिक लम्बे भी हो सकते हैं। पोषण-प्रभाव का यह एक स्पष्ट उदाहरण है, इसका जलवायु के प्रति अनुकूलन के साथ धोखा नहीं खाना चाहिए।

किन्तु पोषण से शरीर के क़द पर जो भी प्रभाव पड़ते हों वे जलवायु द्वारा होने वाले प्रभावों को ज़रूरत से ज़्यादा दबा नहीं सकते। यदि किसी नीग्रो की आकृति एस्किमो जैसी हो जाए तो उसे उष्णकटिबंधों में गर्म एवं कष्टपूर्ण जीवन बिताना पड़ेगा—और अगर किसी ऐस्किमो की आकृति नीग्रो के समान हो जाए तो उसे उत्तरध्रुव में तुषाराघात का भीषण प्रहार सहना पड़ेगा। पोषण सम्बन्धी परिवर्तन केवल उतनी सीमा तक ही हो सकते हैं जिससे जलवायु और साइज़ व आकृति के बीच के सन्तुलन में कोई आमूल गड़बड़ी पैदा नहीं होती।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि पिग्मी नीग्रो लोगों के छोटे क़द का कारण उनका पोषणाभाव हो सकता है । इन पिग्मी लोगों का क़द औसतन 152 सें. मी. (5 फुट) से कम होता है । कुछ पिग्मी लोग मध्य अफ्रीका में, तथा अन्य बंगाल की खाड़ी में अण्डमान द्वीपों, मलय प्रायद्वीप, न्यूगिनी और फ़िलिपीन द्वीपसमूह में पाए जाते हैं । ऐसा प्रमाण मिलता है कि बहुत समय पूर्व पिग्मी लोग पूरे उष्णकटिबंधीय अफ्रीका एवं एशिया में पाए जाते थे । कदाचित् इनका उद्‌गम भारत में हुआ और वहाँ से वे पूर्व एवं पश्चिम में फैलते गए और यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया तक पहुँच गए । अपने बौने स्वरूप को छोड़कर ये लोग ऊँचे क़द के नीग्रो लोगों का ठीक-ठीक प्रतिरूप होते हैं जो अफ्रीका और एशिया में पाए जाते हैं (प्लेट 23) ।

लेकिन प्रश्न है कि पिग्मी-बौने बौने ही क्यों होते हैं ? इस बारे में दो मत रखे गए हैं । लेकिन उनमें से किसी भी मत का न तो सत्यापन ही सिद्ध हो सका है और न ही उन्हें सामान्यतः स्वीकार किया गया है । फ़िलहाल, अधिकतर मानव-विज्ञानी शायद यही कहें कि उन्हें इस बारे में कुछ नहीं मालूम ।

पहला मत, पिग्मी लोग उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में रहते हैं और हो सकता है कि इन क्षेत्रों में मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी में पाए जाने वाले ऐसे सूक्ष्ममात्रिक तत्व (trace elements) मिट्टी से बहकर निकल जाएँ जो महत्वपूर्ण पोषण-आहार के रूप में शरीर की वृद्धि के लिए अनिवार्य हैं । निश्चय ही पिग्मियों का भोजन सामान्य साइज़ वाली इर्द-गिर्द की जातियों से भिन्न होता है—पिग्मी लोग शिकारी होते हैं जबकि ऊँचे क़द वाले नीग्रो फ़सलें उगाते हैं, ये फसलें मूलतः एशिया से लाई गई थीं । दूसरा मत, पिग्मी लोग शिकार के लिए आदर्श रूप में अनुकूलित हैं । इनका छोटा क़द इन्हें जंगल में चुस्त और फुर्तीला बना देता है, और इससे भी ज़्यादा महत्व की बात यह है कि इस क़द के द्वारा ये जंगल में चुपके-चुपके और छिपे-छिपे चल-फिर लेते हैं । कदाचित् प्रकृति ने इसी कारण इनके लिए छोटे क़द का वरण किया है ।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान मानव-विज्ञानियों को इस समस्या का इस दृष्टि-कोण से समाधान ढूँढने के प्रयत्न में अधिकाधिक असन्तोष रहा है । अटकलें तो बहुत लगाई गई हैं लेकिन पर्याप्त प्रयोग नहीं किए गए । मनुष्य गर्म तथा ठंडी जलवायु में किस तरह जीवित बने रहते हैं इस बात पर वैज्ञानिक दृष्टि से देख सकने के लिए वैज्ञानिकों ने इस सारे विषय का अध्ययन किया है कि हम अपने शरीर का ताप 98·4° फ़ा० पर कैसे बनाए रखते हैं । अगर हमारा ताप इस स्तर से नीचे गिर जाए या ऊपर उठ जाए तो क्या होता है ।

यदि एक यूरोपीयन व्यक्ति 77° फ़ा० के ताप पर निर्वस्त्र खड़ा हुआ हो तो हम उसे ताप-सन्तुलन में हुआ कहेंगे—यानी उसका शरीर न तो गर्म होता जाएगा

श्रौर न ही ठंडा होता जाएगा। किन्तु यदि ताप 77° फ़ा० से नीचे गिरेगा तो उसका शरीर ठंडा होने लगेगा, नहीं तो उसे अपने शरीर की गर्मी बाहर निकल जाने से रोकनी होगी (अर्थात् तापरोधन, insulation, करना होगा) या फिर अधिक गर्मी पैदा करने के लिए उसे तीव्र व्यायाम करना होगा (प्लेट 16)।

लेकिन प्रश्न है कि कोई एस्किमो व्यक्ति किस तापमान पर ताप-सन्तुलन में रहता है? यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह शरीर में अपने भोजन को ऊर्जा तथा ऊष्मा में कितनी तेज़ी और कितने कारगर रूप में बदलता है। इस क्रिया को चयापचय (metabolism) कहते हैं। अतः मानव-विज्ञानियों को सबसे पहले यह पता लगाना था कि क्या यूरोपीयन की चयापचय दर (metabolic rate) की अपेक्षा ऐस्किमो की चयापचय दर अधिक है। प्रयोगों से पता चला कि वास्तव में ऐसा ही है—प्रायः 15 से 30 प्रतिशत तक अधिक। निस्संदेह इसका एक कारण तो यह है कि ऐस्किमो की खुराक अधिक पोषक होती है जिसमें प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है। यूरोपियनों को ऐस्किमो के प्रकार का भोजन खिलाकर उनकी चयापचय दर नापकर यह बात सही सिद्ध हो चुकी है। ऐसा करने पर उपापचय दर ऊँची हो गई। लेकिन इस दर के ऊँचा होने का कारण चाहे जो भी हो, ऐस्किमो लोगों को इस ऊँची चयापचय दर का बहुत बड़ा लाभ है और उन्हें यूरोपीयन की अपेक्षा ठंड की परिस्थिति को ज़्यादा अच्छी तरह सहन करने की क्षमता प्रदान करती है।

लेकिन जब तापमान ऐस्किमो सन्तुलन के स्तर से भी नीचा चला जाता है तब क्या होता है? और तापमान नीचे जाता भी जरूर है। लगता है कि ऐस्किमो ऐसा होने की नौबत ही नहीं आने देता—वह अपनी ही 'सूक्ष्म जलवायु' (micro-climate) में रहता है। अर्थात् वह अपने बर्फ़ के घरों (इग्लू, igloo) के भीतर की हवा को गर्म रखता है, भले ही घर की दीवारें बर्फ़ की बनी होती हैं। जब वह इन घरों के बाहर जाता है तब वह इतने ज़्यादा कपड़े पहने होता है कि उसकी खाल और कपड़ों के बीच तापमान बहुत ही कम गिरता है।

कपड़ों के द्वारा मिलने वाली सुरक्षा की मात्रा पर जो लोग अनुसंधान करते हैं वे एक इकाई का इस्तेमाल करते हैं जिसे 'क्लॉस' (Clos) कहते हैं। एक क्लॉस सुरक्षा की वह मात्रा है जो किसी व्यक्ति को आराम की अवस्था में एक प्ररूपी यूरोपीय कपड़ों के सूट से प्राप्त हो सकती है। इस पैमाने के आधार पर ऐस्किमो के कपड़े क़रीब पांच क्लॉस के होते हैं, यानी वे औसत यूरोपीयन के पहनने वाले कपड़ों की अपेक्षा पांच गुना अधिक गर्म होते हैं।

बहुत समय से मानव-विज्ञानियों को ऐस्किमो लोगों के उस ताप पर जबकि हमारे हाथ और उंगलियां ठंड से गली जा रही हों अपने हाथ और उंगलियों को एक खास तरीके से इस्तेमाल कर सकने की क्षमता पर विस्मय होता रहा है। उन्होंने ऐसे प्रयोग किए हैं जिनमें ऐस्किमो और यूरोपीयनों को जमाव-बिंदु से कुछ ही डिग्री

ऊपर के ताप पर पानी में अपने हाथ डाले रखने को कहा। एक घंटे बाद यूरोपीयनों की ठंड से बुरी हालत हो गई और उन्हें पानी में से बाहर हाथ निकाल लेने पर विवश होना पड़ा। ऐस्किमो लोगों को बस हाथों में दर्द होने की शिकायत हुई, और मानो सिद्ध करने के लिए कि उन्हें इस स्थिति में कोई परेशानी न थी उनमें से दो लोग शीघ्र हो सो भी गए। बाद में किए गए प्रयोगों से पता चला कि ऐस्किमो लोगों के हाथों और पाँवों में अधिक सुचारु रक्त-प्रवाह पाया जाता है और यही कारण था जिससे कि वे गर्म बने रहे।

ऐस्किमो अपने गर्म बर्फ़ीले घर में रात को बहुत ठंडा नहीं रहता, मगर आस्ट्रेलिया का आदिवासी जो पानी के जमाव-बिंदु के समीप के ताप पर लगभग नंगा सोता है उसे सचमुच बहुत ही ठंड लगनी चाहिए। अतः एक प्रयोग करके देखा गया जिसमें यूरोपीयनों तथा आस्ट्रेलिया के आदिवासियों को जलती हुई अग्नियों की पंक्तियों के बीच नंगा सुलाया गया—आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के सोने का यही परम्परागत तरीक़ा है। रात को सोते समय इन दोनों लोगों की खाल का ताप थोड़ी-थोड़ी देर बाद लिया गया। मगर वास्तव में देखा यह गया कि जबकि आस्ट्रेलियाई आदिवासी आराम से सो रहे थे यूरोपीयनों को नींद न आ सकी, वे ठंड से सिकुड़ रहे थे। मगर आदिवासी गहरी नींद सो रहे थे, भले ही उनकी खाल का ताप यूरोपीयनों की खाल के ताप से काफ़ी ज़्यादा नीचे गिर गया था। कोई ऐसी विधि ज़रूर है जिसके द्वारा ये आदिवासी बहुत ज़्यादा ठंडी परिस्थिति में भी सो सकने के लिए अभ्यस्त अथवा दशानुकूलित (acclimatized) हैं (प्लेट 7)।

मनुष्य को जितना खतरा ठंड से है उतना ही खतरा गर्मी से भी है। यदि शरीर का ताप बढ़कर 110° फ़ा० पहुंच जाए तो शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। और-तो-और, 105° फ़ा० का ताप भी अगर लम्बे समय तक बना रहे तो खतरनाक साबित होता है। गर्मी से बचने के लिए शरीर के कुछ अपने ही खास तरीक़े हैं। जैसे ही बाहर का ताप 83° फ़ा० से ऊपर जाने लगता है तो वैसे ही व्यक्ति चाहे कोई भी काम न करता हुआ आराम से लेटा हुआ हो उसे तुरन्त पसीना आना आरम्भ हो जाता है। अगर वातावरण में बहुत ज़्यादा नमी हो तो 93° फ़ा० के ताप पहुंचने तक सारे शरीर में पूरी मात्रा में पसीना आने लगता है। यदि आपको कभी दुर्भाग्य से धूप में खड़ा रहना पड़े जबकि हवा का तापमान 120° फ़ा० हो—और ऐसी स्थिति उष्णकटिबंधों में रहने वालों के सामने आती है तो प्रति घंटा 1½ किलो से भी अधिक पसीना निकलता जाएगा। मगर वास्तव में आप बहुत देर तक इसी दर से पसीना नहीं निकालते रह सकते। भले ही आप इस विशाल क्षति को पूरा करने के लिए पर्याप्त पानी पीते रहें आपके शरीर से इतना ज़्यादा लवण बाहर निकल जाएगा कि यदि आपने इस लवण को पूरा नहीं किया तो आप तुरन्त बहुत बीमार पड़ जाएँगे। जो व्यक्ति इस विशाल दर से पसीना निकालता है उसके हृदय पर भी बहुत ज़ोर पड़ता है।

उष्णकटिबंधों में रहने वालों के सामने अत्यधिक गर्म हो जाने से बचने के लिए जो एक उपाय है वह चयापचय की दर को नीचा बनाए रखना है—यानी भोजन को ऊर्जा में बदलने की दर को नीचा बनाए रखकर। प्रयोगों से पता चला है कि भारत और ब्राज़ील के लोगों तथा आस्ट्रेलिया के आदिवासियों (प्लेट 17 और 18) में चयापचय दर औसत से करीब 10 प्रतिशत कम होती है। यह एक शीघ्र स्थापित हो सकने वाला दशानुकूलन है। सिंगापुर में रहने वाले अंग्रेजों में लगभग इतनी ही मात्रा में चयापचय दर घटी हुई पाई गई है, हालांकि ये लोग गर्म जलवायु में केवल कुछ ही वर्षों से रह रहे थे।

लेकिन मनुष्य को प्राप्त इन तमाम सुरक्षा-साधनों के बावजूद यदि उसके शरीर की गर्मी निश्चय ही बढ़ती जाने लगे तब क्या होगा? अन्ततः उसे गर्मी से मूर्छा आ जाएगी और यदि उसे काफ़ी जल्दी से ठंडा न किया गया तो हो सकता है कि उसकी जान पर भी आ बने। मानव-विज्ञानियों ने अफ्रीकनों तथा गोरे लोगों के समूहों का यह देखने के लिए अध्ययन किया कि क्या गर्म परिस्थितियों में काम करते समय गोरे लोगों पर गर्मी का अधिक असर पड़ता है। इन प्रयोगों से बड़े ही रोचक नतीजे मिले हैं।

इन प्रयोगों से तीन बातें पता चलीं: पहली, कि अफ्रीकी लोग ज्यादा अच्छे अनुकूलित थे; यदि वे और गोरे लोग समान परिस्थितियों में प्रयोगशाला या चाहे अफ्रीका की खानों में काम करें तो गोरे लोगों की अपेक्षा अफ्रीकियों को कम पसीना आया तथा उनकी हृदय दर कम रही एवं ताप भी कम रहा। दूसरे, प्रयोगों से पता चला कि अभी जो पहली बात कही वह तभी सत्य होती थी जब वातावरण जलवाष्प से भरपूर यानी नम था। शुष्क वातावरण में दोनों वर्गों में हृदय दर तथा तापमान में कोई खास अन्तर न था। तीसरे, यह बात पता चली कि अभ्यास करने पर यूरोपीयन लोग गर्म परिस्थितियों में अच्छा काम कर पाते थे। अन्ततः वे भी उतना ही अच्छा और लगभग उतनी ही देर तक लगातार काम कर सकते थे जितना कि अफ्रीकी लोग।

ये नतीजे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टि से ये एक विशिष्ट समय पर एवं एक विशिष्ट स्थान पर काम करने वाले केवल दो समूहों के लिए सही हैं फिर भी इनसे एक ऐसी चीज़ का पता चलता है जो समस्त संसार पर सही लागू होती है। चाहे जैसा भी जलवायु हो गर्म या ठंडा, नम या शुष्क उसके लिए मानव-शरीर एक विलक्षण रूप में सुअनुकूलित होता है। और पता चला कि नई स्थिति एवं नई जलवायु के लिए यह शरीर अपने-आपको बहुत ही जल्दी अनुकूलित कर लेता है। ऐसा होना ठीक ही है क्योंकि जैसा कि आप आठवें अध्याय में पढ़ेंगे अब जबकि पहले की अपेक्षा मानव ज्यादा दूर-दूर और ज्यादा जल्दी-जल्दी यात्राएँ करता है तो यह क्षमता अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है।

6. रक्त, इतिहास और रोग

अभी तक मैंने मनुष्य की उन विभिन्नताओं का वर्णन किया जो बाहर से ही कोरी आँखों को नज़र आ जाती हैं—जैसे कि खाल का रंग, बाल की आकृति और शरीर का क़द। लेकिन दो मनुष्यों के बीच ऐसी विभिन्नताएँ भी होती हैं जिन्हें हम आँखों से देख नहीं सकते—और ये हैं अदृश्य रासायनिक अन्तर जो किसी भी माने में दृश्यमान विभिन्नताओं से कम महत्व के नहीं हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अन्तर रक्त में पाए जाते हैं।

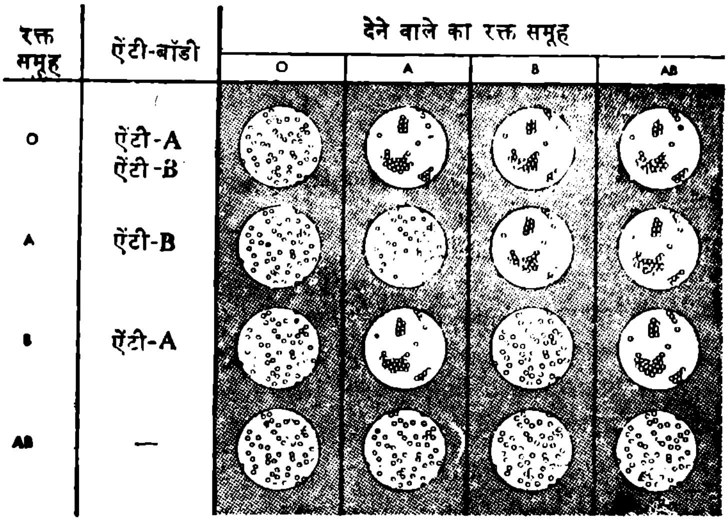
रक्त तीन चीज़ों का मिश्रण है—लाल रक्त कोशिकाएँ जो रंग प्रदान करती हैं, श्वेत कोशिकाएँ और प्लाज़्मा (plasma) अथवा लसीका नामक हल्का पीला-सा द्रव्य। लगभग पचास वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया था कि सभी लाल रक्त कोशिकाओं में ठीक एक-से ही पदार्थ नहीं होते। कुछ में एक रसायन होता जान पड़ा जिसे उन्होंने पदार्थ A का नाम दिया, कुछ में एक अन्य रसायन मिला जिसे उन्होंने पदार्थ B कहा। इनके अलावा कुछ ऐसी लाल रक्त कोशिकाएँ भी थीं जिनमें A तथा B दोनों ही पदार्थ पाए गए, तथा कुछ ऐसी भी थीं जिनमें इनमें से कोई भी पदार्थ न था। इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्यों को चार समूहों में विभाजित किया जा सकता था—A, B, A-एवं-B, तथा O समूह (जिसमें व्यक्तियों में A या B में से कोई भी पदार्थ नहीं होता)।

यह खोज वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों दोनों ही के लिए अत्यन्त महत्व की थी। उससे पहले डाक्टर उन घायल लोगों में खून चढ़ाते रहे थे जिनमें बहुत-सा रक्त बह कर बाहर निकल जाने से खून की कमी आ जाती थी। यह इलाज प्रायः सफल हो जाता था लेकिन कभी-कभी इससे भीषण परिणाम भी निकलते थे। रक्त चढ़ाने के बाद रोगी में भीषण प्रतिक्रिया होती थी और कुछ ही घंटों में उसकी मृत्यु हो जाती थी। ऐसा क्यों ?

पता चला कि इस प्रश्न के उत्तर का सम्बन्ध प्लाज़्मा कहे जाने वाले रक्त के तरल भाग से जुड़ा था। यदि B रक्त-समूह वाले व्यक्ति की लाल कोशिकाओं को A समूह के व्यक्ति के प्लाज़्मा के साथ मिलाया जाए तो शीघ्र ही कोशिकाओं का आपस में चिपककर एक रक्त 'पिण्ड' (clump) बन जाता है। वैज्ञानिकों को पता चला कि A रक्त समूह के व्यक्तियों के प्लाज़्मा में एक पदार्थ पाया जाता है जिसे उन्होंने ऐंटी-B (Anti-B) का नाम दिया क्योंकि यह B समूह के लोगों की

रक्त-कोशिकाओं के साथ 'पिण्ड' बना देता है। B समूह के तमाम व्यक्तियों के प्लाज्मा में ऐंटी-A (Anti-A) होता है तथा A समूह के तमाम व्यक्तियों के प्लाज्मा में ऐंटी-B होता है। O समूह के लोगों में ऐंटी-A तथा ऐंटी-B दोनों ही होते हैं तथा AB समूह के लोगों में न ऐंटी-A और न ऐंटी-B कोई भी नहीं होता।

इन खोजों से डाक्टरों को पता लग गया कि किस व्यक्ति को कौनसा रक्त चढ़ाया जा सकता है। मान लिया कि उन्हें B समूह वाले व्यक्ति को रक्त चढ़ाना है, तो उसे कोई-सा भी रक्त दिया जा सकता है बशर्ते कि उस रक्त में ऐंटी-B न हो। इसका अर्थ हुआ कि उसे B अथवा AB रक्त दिया जा सकता है। नीचे दी गई तालिका से पता चल जाएगा कि किस व्यकित को कौनसा रक्त दिया जा सकता है।



चित्र 9. विभिन्न रक्त-समूहों में विभिन्न पदार्थ पाए जाते हैं। रक्त-दान केवल तभी हो सकता है जबकि पिण्ड बनने की क्रिया न हो। उदाहरण के लिए O रक्त सभी समूहों को दिया जा सकता है लेकिन AB रक्त केवल AB समूह को ही दिया जा सकता है।

तो इस तरह चिकित्सा के क्षेत्र में यह एक महान् खोज थी। मगर मानव-विज्ञानियों के लिए तो यह और भी अधिक महत्व की थी। उन्हें शीघ्र ही पता चल गया कि मानव के अध्ययन के लिए रक्त-समूहों का विषय एक अत्यन्त महत्व का था। रक्त-समूह मानव की एक ऐसी विभिन्नता है जो कुछ दृष्टि से बाक़ी तमाम विभिन्नताओं को एकसाथ मिलाकर तुलना करने से भी अधिक रोचक पाई गई है।

रक्त-समूह एक बड़ा ही बेजोड़ लक्षण है। रक्त-समूह स्थायी होते हैं। यदि जन्म के समय किसी बच्चे का रक्त-समूह O है तो वह किसी भी तरह जीवन में बदला नहीं जा सकता, न ही उस पर जलवायु का कोई असर होता है। यह लक्षण त्वचा के रंग से जोकि ऋतुओं के अनुसार बदल जाते हैं बहुत भिन्न हैं, या फिर हड्डियों की आकृतियों से भी भिन्न हैं जो बच्चे के बढ़ते जाने के साथ-साथ बदलती जाती हैं। वैज्ञानिकों को अब पता चल चुका है कि रक्त-समूहों की वंशागति किस प्रकार होती है, और प्रायः बच्चे के जन्म के पूर्व ही पूर्वघोषणा की जा सकती है कि बच्चे का रक्त-समूह क्या होगा बशर्ते कि उसके माता-पिता के रक्त-समूह मालूम हों।

इस तरह मानव-विज्ञानियों ने तर्क प्रस्तुत किया कि अगर उन्हें पता चल जाए कि दुनिया के किन लोगों का कौनसा रक्त-समूह है तो उन्हें मनुष्य और उसके इतिहास की बहुत-कुछ जानकारी हो जाएगी—उन्हें इस इतिहास की जानकारी की आशा किसी और विधि से कभी नहीं हो सकती थी। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, हालांकि रक्त-समूहों का विषय इतना लाभकर सिद्ध नहीं हुआ जितना कि उससे आशा थी।

शीघ्र ही सारे संसार में मानव-विज्ञानियों ने काम करना शुरू कर दिया। वे रक्त के नमूने ले-लेकर उन्हें चार समूहों—A, B, AB तथा O में विभाजित करने लगे। निस्संदेह उन्हें पता चला कि हर आबादी में ये चारों समूह मौजूद थे लेकिन उन्होंने देखा कि कुछ जातियों में अन्य रक्त-समूहों की अपेक्षा कोई एक समूह अधिक पाया जाता था। उदाहरण के लिए, बहुत ही कम अमरीकी इंडियनों में B अथवा AB पाया जाता है—वे लगभग सभी O या A समूह के हैं। उत्तर-पूर्व एशिया में बहुत से लोग B रक्त-समूह के हैं लेकिन जैसे-जैसे हम पश्चिम की ओर यूरोप तक यात्रा करते जाते हैं वैसे हमें इस समूह के लोग कम-ही-कम दिखाई पड़ते हैं।

कदाचित् पिछले पैराग्राफ़ में आपने किसी एक ऐसी बात पर ध्यान दिया होगा जो चौथे अध्याय में कही गई बात की परस्पर-विरोधी जान पड़ती है? यदि अमरीका के प्रथम निवासी एशिया से बेरिंग जलडमरूमध्य से होकर अमरीका में जाकर बसने वाले लोग थे तो प्रश्न उठता है कि आज के अमरीका के मूल निवासियों में वे ही रक्त-समूह क्यों नहीं पाए जाते जो कि एशियाइयों में पाए जाते हैं? इस प्रश्न ने मानव-विज्ञानियों को बहुत वर्षों से उलझन में डाल रखा है—और अब भी इसके उत्तर पर उनमें कोई सामान्य सहमति नहीं है।

तीन सम्भव समाधान प्रस्तुत किए गए हैं: पहला, कि आदितम अमरीकन उत्तर-पूर्व एशिया में से नहीं बने हैं और वे बेरिंग के 'थल-सेतु' से पार करके नहीं

गए। इसका मतलब यह हुआ कि या तो मानव अमरीका में स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुआ या फिर वह प्रशान्त या यहाँ तक कि अटलांटिक महासागर के रास्ते किसी और क्षेत्र से पार करके पहुँचा। लेकिन मनुष्य स्वतन्त्र रूप में अमरीका में विकसित नहीं हो सकता था क्योंकि विकास-वृक्ष में मानव की शाखा का और कोई भी सदस्य वहाँ नहीं पाया जाता जैसे कि न तो औरंग-उटान और न गौरिला ही पाए जाते हैं। यही नहीं, मानव-विज्ञानियों को अमरीका में मानव के किसी पूर्वज का कोई फ़ॉसिल भी नहीं मिला है। साथ ही यह भी बिल्कुल निश्चित ही है कि आदि मानव के पास कोई ऐसी मजबूत नौका भी नहीं थी जिससे वह इन विशाल और तूफ़ानी अटलांटिक एवं प्रशान्त महासागरों को पार कर सकता था।

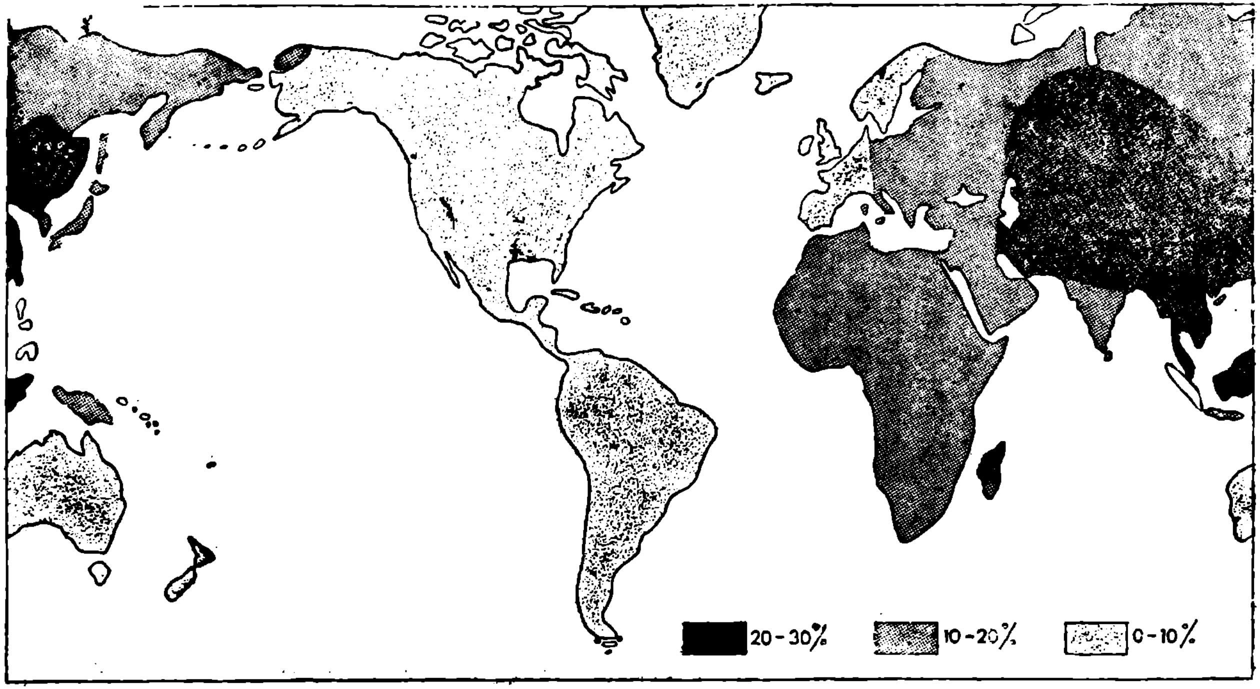
दूसरा, कदाचित् अगर थोड़े से शिकारियों की एक टोली बेरिंग जलडमरूमध्य से पार करके पहुँची होगी तो हो सकता है कि कुदरत का कोई ऐसा अजूबा रहा हो कि उस टोली में एशियाई आबादी के कुछ ऐसे ही सदस्य रहे हों जिनमें B रक्त-समूह नहीं था। निश्चय ही ऐसा सम्भव तो है मगर शायद हुआ न हो।

तीसरा, शायद मूलतः B रक्त-समूह के लोग अमरीका में पहुँचे तो होंगे लेकिन समय बीतते जाने के साथ-साथ यह रक्त-समूह लगातार कम होता गया और अन्त में लगभग पूरी तरह समाप्त ही हो गया। यह भी सम्भव है, लेकिन यदि ऐसा हुआ था तो इसका कुछ कारण अवश्य रहा होगा। यूरोप में काले-भट्ट लोगों के न पाए जाने की आशा करना काफ़ी तर्कसंगत है, लेकिन क्या अमरीका में B रक्त-समूहों के न पाए जाने के भी कोई अच्छे कारण हो सकते हैं ?

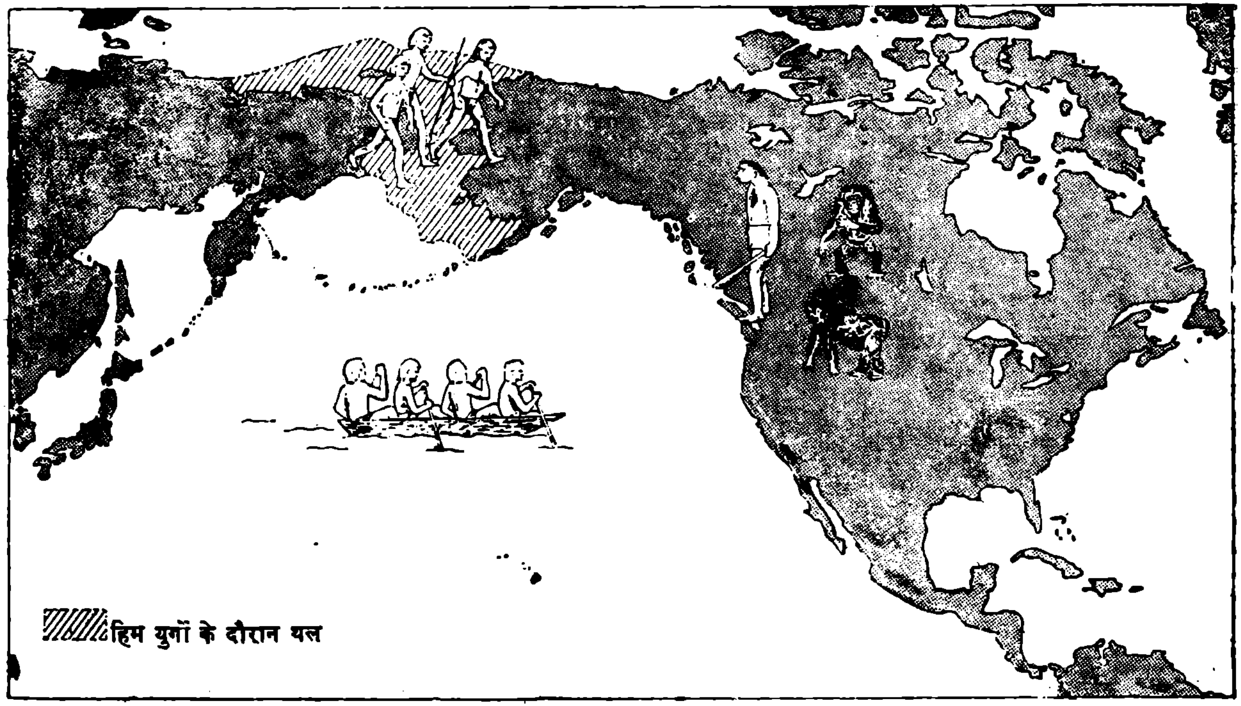
जब रक्त-समूहों की पहले-पहल खोज हुई थी तब मानव-विज्ञानियों ने सोचा था कि इन समूहों का जीवित रह सकने से कोई भी सम्बन्ध न होगा—भला कोई एक रक्त-समूह लाभदायक और कोई दूसरा रक्त-समूह हानिकारक क्यों होगा ? स्पष्ट जान पड़ता था कि (केवल रक्त चढ़ाने के मामलों को छोड़कर) रक्त-समूह की विभिन्नताएँ गौण थीं जिनका इन समूह वाले लोगों को कोई लाभ नज़र नहीं आता था।

वैज्ञानिकों को इस बात पर अब पूरा विश्वास नहीं है। देखा गया है कि O रक्त-समूह वाले लोगों को अंतड़ी के प्रारम्भिक भाग ड्युओडेनम के फोड़े (duodenal ulcers) का खतरा ज्यादा रहता है और A रक्त-समूह के लोगों को आमाशय के कैंसर (gastric cancer) का खतरा रहता है। इसी प्रकार अन्य रोग जैसे कि बैक्टीरियाओं के संक्रमण को भी रक्त-समूहों में जोड़ा गया है।

इसका अर्थ यह हुआ कि अब हम और आगे विश्वास नहीं कर सकते कि रक्त-समूहों का कोई अनुकूलन-महत्व नहीं है। कोई कारण नहीं कि B रक्त-समूह अमरीका में अलाभकर हो और एशिया में लाभकर। ये लाभ तथा अलाभ ठीक-ठीक क्या रहे होंगे आज भी हमें नहीं मालूम। लेकिन रक्त-समूहों की हमारी जानकारी



चित्र 10. B रक्त-समूह के लोगों की अधिकतम प्रतिशतता मध्य एशिया में पाई जाती है (20-30 प्रतिशत) और निम्नतम प्रतिशतता अमरीका में पाई जाती है। यदि अमरीका में जाकर बसने वाले लोग पहले पहल एशिया से गए थे तो यह आशा करनी होगी कि वहाँ B रक्त-समह के लोग ज्यादा होंगे—यह समस्या शारीरिक मानव-विज्ञान की न सुलझाई जा सकी समस्याओं में से एक है।



चित्र 11. उत्तरी अमरीका में मानव या तो समुद्र द्वारा पहुंचा होगा या बेरिंग थल-सेतु के द्वारा—या हो सकता है कि उसका विकास वहीं हुआ हो। मगर निश्चय ही वह बेरिंग थल-सेतु से पार करके गया होगा—अमरीका में कोई फ़ॉसिल मानव या फ़ॉसिल कपि नहीं पाए गए हैं, और मानव की प्राचीनतम अपरिष्कृत नावें इतना लम्बा सफ़र कर सकने के लिए क़तई उपयोगी नहीं रही होंगी।

बढ़ रही है और कोई ताज्जुब नहीं होगा कि जल्दी ही वैज्ञानिकों को इस प्रश्न का उत्तर पता चल जाए।

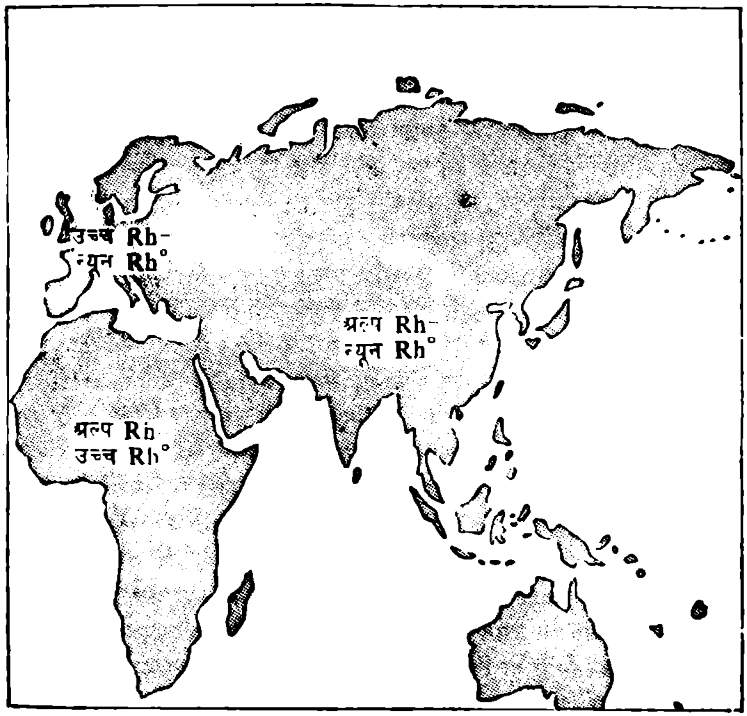
लेकिन यह मत सोचिए कि दुनिया में अध्ययन के वास्ते बस ये ही चार रक्त-समूह हैं। कुल मिलाकर क़रीब ग्यारह विभिन्न प्रकार के रक्त-समूह पाए जाते हैं (ABO रक्त-समूह इन्हीं में से एक रक्त-समूह प्रणाली है)। इन अन्य प्रणालियों में से कुछ में तो बहुत ज़्यादा यहाँ तक कि पंद्रह विभिन्न समूह तक पाए जाते हैं; ठीक उसी तरह जैसे कि ABO प्रणाली में चार विभिन्न समूह होते हैं। वैज्ञानिकों ने इन ग्यारह प्रणालियों का अध्ययन करना शुरू ही किया है। इनमें से केवल दो प्रणालियों ABO तथा Rh प्रणालियों का हम यहाँ विवेचन करेंगे।

रक्त-समूह केवल मानव की ही विशेषता नहीं है। बहुत-कुछ A और B जैसे पदार्थ अन्य प्राइमेटों (primates) में भी पाए जाते हैं (प्राइमेट स्तनियों का एक वर्ग है जिसमें मानव, कपि तथा बन्दर आते हैं)। रीसस बन्दर के रक्त में एक पदार्थ है जो मानव के रक्त में भी पाया जाता है—इसे रीसस कारक (Rhesus factor) कहते हैं। मनुष्य के रक्त-समूहों को या तो रीसस पॉज़िटिव (Rh+) या रीसस नेगेटिव (Rh—) कहते हैं। इस रक्त-समूह का ABO प्रणाली से कोई सम्बन्ध नहीं—कोई व्यक्ति A, B, O, अथवा AB में से किसी भी रक्त-समूह का हो सकता है लेकिन साथ ही वह या तो Rh+ या Rh— भी होगा।

Rh प्रणाली की एक सबसे रोचक बात यह है कि इसमें एक बहुत ही निश्चित 'वरणात्मक' महत्व पाया जाता है। यदि किसी Rh— माता के कोई Rh+ बच्चा पैदा होता है (और यदि पिता Rh+ हो तो ऐसा होना काफ़ी सम्भाव्य है) तब हो सकता है कि बच्चे और माता के रक्त के बीच एक प्रतिक्रिया हो। जब तक यह बात मालूम नहीं थी तो ऐसे बच्चे प्रायः मर जाया करते थे। लेकिन अब जैसे ही इस लक्षण से पीड़ित बच्चा पैदा होता है वैसे ही डाक्टर इस बच्चे का सारा रक्त शरीर से निकाल देते और उसके स्थान पर उसमें नया स्वस्थ खून चढ़ा देते हैं। पुराने ज़माने में ऐसा नहीं किया जाता था जिससे कि जब कभी Rh+ आबादी का Rh— से मेल होता था तो इस प्रकार दो वर्गों के बीच होने वाले अन्तर्विवाह से उत्पन्न हुए बच्चों में मृत्यु-दर बहुत ज़्यादा ऊँची होती है। इस प्रकार Rh+ आबादी में Rh— वाले वर्ग को निश्चय ही एक हानि होगी। लेकिन यदि सारी ही आबादी Rh— होती तो Rh— वाले लोगों को कोई अलाभ नहीं होता। इस दूसरी स्थिति में माता के लिए Rh+ बच्चा होने की कोई सम्भावना ही नहीं होती।

Rh रक्त-समूह का वितरण भी बहुत-कुछ उसी प्रकार से है जैसे कि मनुष्य में पाए जाने वाली दृश्यमान विभिन्नताएँ हैं। तीन मुख्य क्षेत्रों—यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया, सभी में अलग-अलग रीसस लक्षण पाए जाते हैं। यूरोप में Rh— लोगों की विस्मयकारी रूप में बड़ी संख्या पाई जाती है—लगभग हर सात या आठ में से एक

व्यक्ति Rh— होता है। पाइरिनीस में रहने वाले बास्क लोगों में लगभग हर तीन में से एक व्यक्ति Rh— होता है; लेकिन इस विषय में और आगे विस्तार से बातचीत करेंगे। यूरोप को छोड़कर अफ्रीका, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में Rh— बहुत कम पाया जाता है या यूँ कहें कि लगभग होता ही नहीं किन्तु एशिया में उससे कुछ ही थोड़ा अधिक होता है। लेकिन अफ्रीकी आबादी के क़रीब-क़रीब तीन-चौथाई भाग में एक विशेष Rh° जीन पाया जाता है जो दुनिया में और कहीं नहीं पाया जाता। अतः हमें एक ऐसा नमूना मिलता है जो नीचे मानचित्र में दिखाया गया है।



चित्र 12. यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया के तीन महान् क्षेत्रों में बहुत भिन्न Rh रक्त-समूह पाए जाते हैं।

आइए अब हम पलटकर दोबारा बास्क लोगों की बात करें। आपको याद होगा कि मैंने इससे पहले पृष्ठ 33 पर कहा था कि बास्क लोगों की अपनी अलग ही भाषा थी तथा इन लोगों का अन्य यूरोपीय लोगों के साथ जोड़ बैठाना आसान नहीं जान पड़ता। इन लोगों के रक्त-समूह भी ठीक यही समस्या प्रस्तुत करते हैं। प्रश्न है कि इस जाति में Rh— लोगों की संख्या इतनी ज़्यादा क्यों है? मान लिया

कि किसी समय समस्त यूरोप केवल Rh— ही था। जैसा कि मैंने अभी स्पष्ट किया था, इससे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि यदि Rh+ पिता नहीं है तो Rh— माताओं के Rh+ बच्चे नहीं होंगे। इसलिए कोई कारण नज़र नहीं आता कि आरम्भिक यूरोपियनों में Rh— जाति क्यों न रही हो। लेकिन लगभग 2000 ईसा पूर्व से लेकर 1000 ईस्वी तक यूरोप पर लगातार एक के बाद एक आक्रमणों का तांता लगा रहा। दक्षिण से और पूर्व से नए-नए विजेता लोग आकर बसने लगे। निश्चय ही ये Rh+ लोग थे। अतः उसके बाद धीरे-धीरे यूरोप के रक्त-समूह Rh— से Rh+ बदलते गए होंगे। इस परिवर्तन में कदाचित् बास्क जाति का ही एक छोटा-सा वर्ग अछूता रह गया होगा जिसमें आज भी Rh— की उच्च प्रतिशतता पाई जाती है। लगता है कि यही जाति प्रारम्भिक यूरोपीय जाति के मात्र उत्तरजीवी बचे हैं। इन्हीं में मूल लक्षण कायम बने रहे होंगे क्योंकि ये एक छोटे समूह के रूप में हो गए थे जो पाइरिनीस पर्वतों के कारण महान् प्रवास से कटकर अलग-थलग रह गया था।

रक्त-समूहों के विषय से हमें एक और बहुत ही महत्वपूर्ण बात सीखनी है। कुछ वर्ष पहले दो अमरीकी वैज्ञानिक—प्रोफ़ेसर लेस्ली डन्न तथा उसका पुत्र स्टीफ़ेन, रोम में रह रही यहूदी आबादी का अध्ययन करने वहाँ गए। प्रोफ़ेसर डन्न एक आनुवंशिकीविद् (geneticist) हैं और उनका पुत्र एक समाज-विज्ञानी है। इन दोनों के अध्ययनों का विशेष महत्व है क्योंकि इन अध्ययनों से ये दो पृथक् विज्ञान एक बहुत ही महत्वपूर्ण विधि से परस्पर जुड़ गए हैं।

रोम में यहूदी लोगों का एक छोटा-सा समाज है जिनमें विवाह आदि कट्टर रूप में अपने-ही-अपने भीतर होते हैं। वे लगभग दो हज़ार वर्ष से इसी तरह अपने इतालवी पड़ोसियों के साथ उनसे बिना घुले-मिले रहते चले आए हैं। खोज-बीन से पता चला कि यहूदियों में रोम में रहने वाले इतालवियों से विभिन्न रक्त-समूह व्यवस्था पाई जाती है। रोम के यहूदियों में वहाँ के इतालवियों की अपेक्षा B रक्त-समूह के लोगों की संख्या कहीं ज्यादा है। साथ ही इन यहूदियों में एक विरल Rh जीन भी था जो इतालवियों तथा यूरोपियनों में लगभग पूर्णतः अनुपस्थित था।

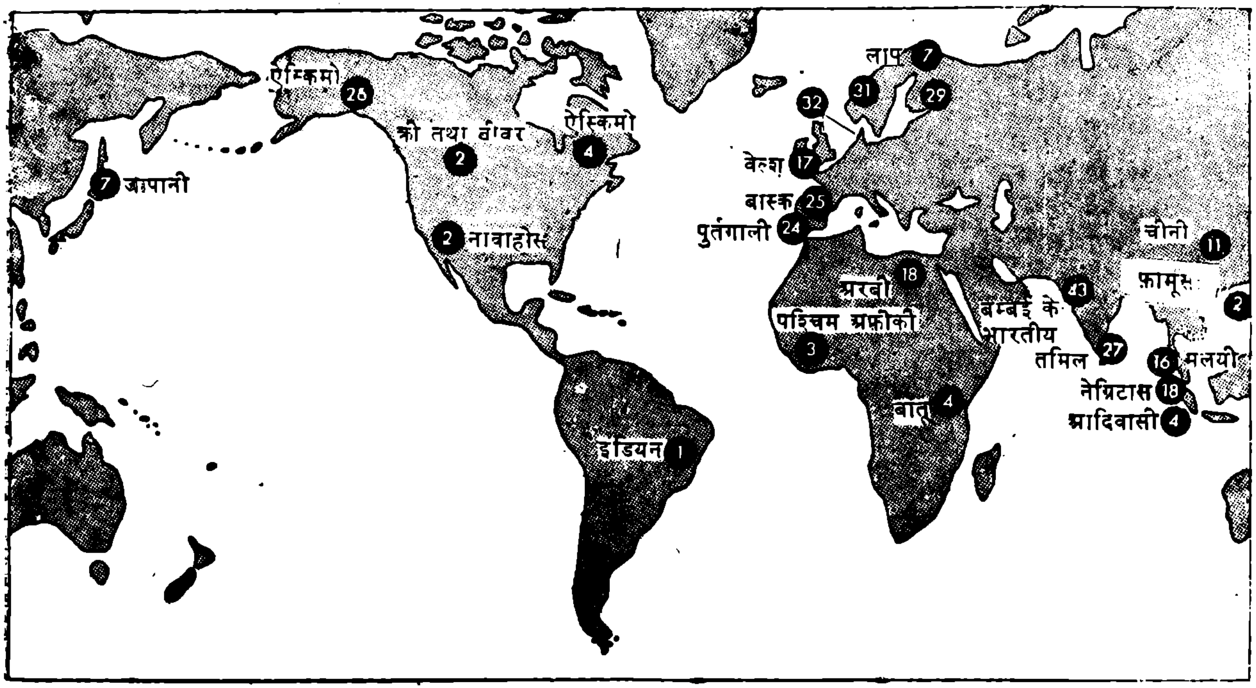
अभी तक जब भी हमने विभिन्नताओं पर विचार किया तब हमने उस प्रभाव पर बल दिया जो जलवायु या किसी मानव-प्रवास ने उन विभिन्नताओं पर पैदा किया होगा। रोमवासी यहूदियों का अपने इतालवी पड़ोसियों से स्पष्ट पृथक् बने रहने का एक कारण उनके समाज का यह कड़ा नियम था कि वे अन्य इतालवियों से विवाह नहीं कर सकते थे। जब कभी समाजिक रीति-रिवाजों से अन्तर पैदा होते या अन्तर कायम बने रहते हैं तब हम इसे सामाजिक क्रम-विकास (social evolution) कहते हैं। यह एक ऐसा क्रम-विकास है जो भौतिक दबावों के कारण नहीं आता, वरन सामाजिक कारणों अर्थात् समाज के नियमों के कारण आता है। आज संसार में यही सामाजिक क्रम-विकास दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है, और इस अतिरोचक विषय पर हम दोबारा अध्याय आठ में विचार करेंगे।

7. कोशिकाएँ जिनका मतलब मौत या जिंदगी

मानव-विज्ञान की मेरी सबसे पहली स्मृतियों में से एक स्मृति केम्ब्रिज के उस एक बड़े-से व्याख्यान-कक्ष की है जो हड्डियों, खोपड़ियों और पुराने-पुराने शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ था। मुझे वह एक भाषण सबसे अच्छी तरह याद है जिसमें प्राध्यापक ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक हममें से हर एक विद्यार्थी को एक-एक टेस्ट-ट्यूब पकड़ा दी थी जिसमें ठीक पानी जैसा दीखने वाला एक तरल डाला हुआ था। उसने हममें से हर एक को इस तरल को जीभ से चखने और स्वाद का वर्णन करने के लिए कहा। मैं सावधान था। मैंने तरल की मुश्किल से एक बूँद मुँह में रखी। मेरा सावधान होना सही निकला क्योंकि निश्चय ही तरल की एक जरा-सी बूँद ने भी मेरा जायका बुरी तरह बिगाड़ दिया। लेकिन मेरे बराबर वाले साथी को कुछ भी तो नहीं हुआ। उसने मेरे टेस्ट-ट्यूब से लेकर द्रव चखा—वह भी उसके लिए फ़ीका पानी जैसा था।

समूची क्लास में लगभग एक-तिहाई लोग ही इस तरल को चख पाए। इस तरल में एक रसायन फ़ीनाइलथीओकाबमाइड (phenylthiocarbamide) घुला था जिसे संक्षेप में PTC कहते हैं। इस रसायन का स्वाद चख सकने की क्षमता भी मानव की एक अन्य आनुवंशिक विभिन्नता है। कुछ लोग इसे चख सकते हैं, कुछ नहीं चख सकते। प्रकटतः चिम्पेंजियों में भी यही आनुवंशिक क्रिया-विधि पाई जाती है—कुछ चिम्पेंज़ी PTC चख सकते हैं, कुछ नहीं चख सकते।

चित्र 13 में दिए गए मानचित्र में प्रत्येक आबादी में इस पदार्थ को चख सकने की क्षमता रखने वाले लोगों की प्रतिशतता दर्शाई गई है। आप देखेंगे कि दुनिया में 'स्वाद संवेदनशीलता' में बहुत भारी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। अभी तक वास्तव में हमें ठीक-ठीक पता नहीं कि ऐसा क्यों होता है लेकिन बड़ी रोचक बात है कि न चख सकने वालों की सबसे अधिक प्रतिशतता भारत में पाई जाती है। भारत एक ऐसा देश है जिसमें बेहद आबादी और लगभग सदैव ही भोजन की कमी रही है। सम्भव जान पड़ता है कि जो लोग PTC नहीं चख सकते उन्हें कुछ भोज्य पदार्थों के लिए पसन्द-नापसन्द कम होती है। अकाल के दिनों में शायद इसका ज़्यादा अन्तर नहीं पड़ेगा कि आपको कौन-सा भोजन पसन्द है और कौन सा नापसन्द—आपको जो भी मिल जाएगा वही खा लेंगे। लेकिन यदि आहार कम हो मगर इतना कम नहीं कि उसे अकाल कहा जाए, तो जो लोग सभी-कुछ खा सकते हैं वे पसन्द-नापसन्द वाले



चित्र 13. PTC को चख सकने वाले लोगों की प्रतिशतता संसार के अलग-अलग भागों में अलग-अलग है—क्यों है, कोई नहीं जानता।

लोगों से बेहतर रहेंगे। शायद इसी बात से भारत में न चख सकने वालों की अधिक प्रतिशतता का स्पष्टीकरण हो सकता है।

शायद आप सोचते हों कि यह तो मानव की एक अत्यन्त छोटी और नगण्य विभिन्नता है। लेकिन अन्य विभिन्नताएँ भी हैं जो पहली नज़र में तो उतनी ही छोटी और नगण्य नज़र आएँगी लेकिन फिर भी उनमें से अनेक विभिन्नताएँ मनुष्य के लिए अक्षरश: जीवन-मरण का प्रश्न हो सकती हैं।

आपको शायद मालूम हो कि रक्त की लाल कोशिकाओं में सबसे महत्वपूर्ण रसायन पदार्थ हीमोग्लोबिन (haemoglobin) होता है। इसी पदार्थ के अणु से रक्त का रंग लाल दीखता है। बहुत समय हुआ अमरीका का एक डाक्टर एक नीग्रो बच्चे की किसी अज्ञात बीमारी का पता लगाने के लिए उसकी परीक्षा कर रहा था। डाक्टर ने देखा कि बच्चे की लाल रक्त कोशिकाओं की शक्ल बिगड़ी हुई है—वे बजाय गोल टिकिया जैसी होने के (प्लेट 24) हंसिया जैसी आकृति की हैं जैसे कि दूज का चाँद हो (प्लेट 26)।

यह कोई अकस्मात् संयोग नहीं था। ये हंसिया-कोशिकाएँ शरीर की कोशिकाओं को आक्सीजन नहीं पहुँचा पातीं और इन्हीं के कारण उस लड़के को वह रोग था। यह रोग वंशागत पाया गया। हीमोग्लोबिन के अणु के रासायनिक विश्लेषण से पता चला कि यह ऐमिनो अम्ल (amino acid) नाम के सरल रसायनों के लगभग तीन सौ विभिन्न अणुओं का बना होता है। हंसिया-कोशिका के हीमोग्लोबिन में बस इनमें से एक ही ऐमिनो अम्ल सामान्य हीमोग्लोबिन से भिन्न होता है। तीन सौ में से बस एक ऐमिनो अम्ल का अन्तर ही व्यक्ति के लिए जीवन की बजाय मृत्यु का कारण बन जाता है।

शीघ्र ही पता चला कि कुछ लोगों में हंसिया-कोशिका का जीन होते हुए भी रोग का कोई चिह्न नहीं होता। इन लोगों को यह हंसिया जीन अपने एक जनक से वंशागति में मिला होता है तथा दूसरे जनक से उन्हें एक सामान्य जीन प्राप्त हुआ होता है। जिन लोगों में यह जीन दोनों ही जनकों से वंशागत होता है उन्हें भीषण रोग हो जाता है और वे पूरी तरह बढ़ते जाने से पहले ही मौत के शिकार हो जाते हैं।

शीघ्र ही मानव-विज्ञानियों के सामने प्रश्न आया कि आखिर यह जीन समाप्त क्यों नहीं हो गया। हंसिया-कोशिका वाले बहुत से लोग बचपन में ही हर साल इस रोग से मर जाते हैं, इसलिए उनके भीतर धारण किए हुए ये हंसिया-कोशिका जीन अगली पीढ़ियों में नहीं पहुँच पाते। फिर भी अफ्रीका की कुछ जनजातियों में लगभग 40 प्रतिशत सदस्यों में यह जीन एक जनक से वंशागत हुआ होता है। यह इतना क्यों पाया जाता है ? क्या यह नहीं हो सकता कि हंसिया-कोशिका के जीन का कोई लाभ हो, बशर्ते कि यह दोनों जनकों से सन्तान में एकसाथ वंशागत न हुआ हो ?

हंसिया-कोशिका का जीन लगभग समूचे अफ्रीका में पाया जाता है। कुछ थोड़ी-सी मात्रा में यह इटली, यूनान तथा तुर्की में भी पाया जाता है—ये ठीक-ठीक वही क्षेत्र हैं जिनमें मलेरिया का घातक रोग भी होता है। सूक्ष्म अध्ययन से पता चला कि जहां-जहां मलेरिया ज़्यादा था वहां-वहां हंसिया रक्त-कोशिकाएं भी ज़्यादा पाई जाती थीं। जहां-जहां मलेरिया नहीं था वहां-वहां हंसिया-कोशिकाएँ भी या तो बिल्कुल ही नहीं थी या थीं तो बहुत ही कम।

खोजकर्त्ताओं ने अध्ययन करना शुरू किया कि जिन लोगों में हंसिया-कोशिका का जीन होता है लेकिन जिनमें हंसिया-कोशिका के रोग को पैदा करने वाले इस जीन की दोहरी ख़ुराक नहीं है (यानी जिनमें इन जीनों का जोड़ा नहीं होता) उन पर मलेरिया का प्रभाव क्या होता है। उन्हें पता चला कि जिन बच्चों में हंसिया-कोशिका जीन होता है उनमें बिना इस जीन वाले बच्चों की तुलना में मलेरिया होने पर उससे बचने की 25 प्रतिशत सम्भावना ज़्यादा होती है। उन्हें यह भी पता चला कि हंसिया-कोशिका वाली औरतों को भी जबकि वे गर्भवती थीं मलेरिया से ग्रस्त हो जाने पर कम शारीरिक हानियां हुईं।

अतः हम अनुमान लगा सकते हैं कि जो लोग अधिक मलेरियाई क्षेत्र में रहते होंगे उन पर क्या बीतती होगी। जिन लोगों में हंसिया-कोशिका के जीन की दोहरी मात्रा होती है वे बचपन में ही चल बसेंगे। जिन लोगों में जीन क़तई नहीं होगा वे मलेरिया से ग्रस्त होकर चल बसेंगे। जिन लोगों में हंसिया-कोशिका का अकेला जीन होगा वे मलेरिया से सुरक्षित बने रहेंगे—उनमें से अनेक लोग जिएँगे, विवाह करेंगे और बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करेंगे जिससे आबादी जारी बनी रहेगी।

अगर कहा जाए कि बहुत से अफ्रीकी लोगों का जीवित बना रहना इसी सूक्ष्म बदशक्ल बन गई लाल कोशिका के कारण है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अगर यह बदशक्ल कोशिका न होती तो शायद वे लोग बहुत पहले ही चल बसे होते।

मनुष्य में मलेरिया के प्रति कुछ और भी प्राकृतिक सुरक्षाएँ मौजूद हैं। भूमध्य सागर के चारों ओर के लगभग सभी देशों में और थाइलैंड में भी एक रोग थैलेसीमिया (thalassaemia) पाया जाता है। यह भी रक्त का रोग है और एक विशिष्ट प्रकार के हीमोग्लोबिन के न बन सकने के कारण पैदा होता है। यह भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागति के द्वारा पहुँचता है। इससे वे लोग भी पीड़ित हो जाते हैं जो इसके जीन को बस एक ही जनक से वंशागति में प्राप्त करते हैं। हालांकि यह बात जरूर है कि ऐसे इसके एक ही जीन वाले लोग उन लोगों की अपेक्षा बहुत कम पीड़ित होते हैं जिनमें यह जीन दोनों ही जनकों से आया होता है। अतः इस रोग की सम्भावना बहुत ही कम होगी।

फ़िलहाल हमें मालूम नहीं कि इस रोग के कारण व्यक्ति को मलेरिया से सुरक्षा मिलती है या नहीं, क्योंकि अभी तक कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है। मगर चूंकि यह केवल उन्हीं स्थानों में पाया जाता है जहां मलेरिया होता है इसलिए कोई

शक नहीं कि यह रोग व्यक्ति को सुरक्षा पहुंचाता ही होगा। उदाहरण के लिए, भूमध्य सागर के एक द्वीप सार्डीनिया (Sardinia) में यह ठंडे पर्वतीय क्षेत्रों की अपेक्षा निचले क्षेत्रों में कहीं ज्यादा पाया जाता है। अब देखिए, मलेरिया एक विशिष्ट स्पीशीज के मच्छर से फैलता है और मच्छर को जी सकने के लिए गर्माहट चाहिए। थैलेसीमिया का रोग केवल उन्हीं क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों का प्रजनन हो सकता है।

ऐसे और भी अनेक रोग हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागति द्वारा पहुंचते हैं और केवल छोटे अलग-थलग क्षेत्रों में ही पाए जाते हैं। उनमें से अभी तक बहुत ही थोड़े रोगों का अन्य अवंशागतिशील रोगों के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सका है—ऐसा सम्बन्ध जैसा कि हंसिया-कोशिकाओं तथा मलेरिया के बीच जोड़ा गया है। निस्संदेह अभी ऐसे बहुत से सम्बन्ध पता चलने शेष हैं—और उसके लिए ऐसी अनेकानेक रासायनिक विभिन्नताएँ भी पाई जाती हैं। पूरी आशा है कि ये विभिन्नताएँ शीघ्र ही पता चला जाएँगी। ऐसा होने पर मानव-विज्ञान द्वारा चिकित्सा को बेहद लाभ पहुंचेगा।

लेकिन यह सब तो भविष्य की बात है। आइए अब फिर से वर्तमान पर आ जाएँ—प्रशान्त महासागर में स्थित एक द्वीप न्यूगिनी पर। इस द्वीप में फ़ोरे (Fore) नामक एक जनजाति रहती है। इनका सरल जीवन इस द्वीप पर पाई जाने वाली किसी भी अन्य जनजाति के बहुत-कुछ समान है। लेकिन कुरू (Kuru) नामक एक और भयानक बीमारी से होने वाली मौत के कारण इनका प्राचीन युग के जैसा दैनिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है।

कुरू तंत्रिका-तंत्र (nervous system) का रोग है और जिसे यह हो जाए वह शीघ्र ही मर जाता है। शुरू में रोगी अपनी गति को क़ाबू में नहीं रख पाता। शीघ्र ही न वह चल पाता है, न बैठ सकता, न बोल सकता और न ही खा-पी सकता है। रोग के प्रथम लक्षण दीखने के समय से लगभग एक वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है। सबसे अजीब बात तो यह है कि यह रोग दुनिया में सिर्फ़ इन्हीं फ़ोरे लोगों को होता है—और-तो-और, उनके बिल्कुल पड़ोस में ही रहने वाली अन्य जातियों में इस रोग के कारण एक भी मृत्यु नहीं हुई है।

कुरू भी स्पष्टतः एक और वंशागत रोग है। लेकिन इसे पर्याप्त स्पष्टीकरण तब माना जाएगा जबकि इसका भी कोई वैसा ही महत्व पता चलेगा जैसा कि हंसिया-कोशिका का मलेरिया से सुरक्षा में महत्व पाया गया है। न्यूगिनी में दो और घातक रोग कोढ़ (leprosy) तथा यॉज़ (yaws) हैं जो फ़ोरे लोगों में तो बहुत ही कम लेकिन उनके इर्द-गिर्द बसने वाली जातियों में बहुत आम पाए जाते हैं। अतः हो सकता है कि कुरू रोग का जीन शायद इन दो रोगों से सुरक्षा प्रदान करता हो—लेकिन अभी तक इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिला है।

किन्तु हो सकता है कि इसका एक और स्पष्टीकरण हो। फ़ोरे लोग जादू-टोनों में विश्वास करते हैं। यदि फ़ोरे लोगों के किसी पुरुष या स्त्री को कोई दुर्घटना या रोग हो जाए तो हम तो उसे दुर्भाग्य अथवा संयोग की बात ही कहेंगे। लेकिन फ़ोरे किसी दुर्भाग्य अथवा संयोग को नहीं जानता—उसके पास हर चीज़ का कारण अथवा स्पष्टीकरण मिलेगा। उसके विचार में कोई भी दुर्घटना हो जाए तो वह किसी प्रकोप अथवा कुदृष्टि के कारण होती है—और यह कुदृष्टि ओझाओं (sorcerers) के द्वारा आती है। अगर किसी फ़ोरे को कुरू हो जाए तो वह जानता है कि यह बीमारी उसे क्यों हुई। उस पर किसी ओझा ने जादू कर दिया है। इसका बस एक ही इलाज है—ओझा की मौत। इसलिए फ़ोरे लोग किसी एक ऐसे व्यक्ति को चुन लेते हैं जिसने उनके ख्याल में रोग का आक्रमण कराया है, और फिर उस व्यक्ति को मार डालते हैं।

साफ़ जाहिर है कि ये ओझा लोग वे कभी नहीं होते जो स्वयं ही कुरू रोग से पीड़ित हों—कोई भी स्वाभिमानी ओझा अपने-आपको उस रोग से पीड़ित नहीं होने देगा जिसके द्वारा वह अपने ही शत्रुओं को मार रहा हो!

लेकिन जादू-टोने के इस पुराने दक़ियानूसी विश्वास का बहुत महत्वपूर्ण नतीजा निकलता है। कुरू रोग से मरने वाले हर व्यक्ति के साथ-साथ एक स्वस्थ व्यक्ति को मार डाला जाता है। अतः वहां की आबादी में कुरू के जीन की प्रतिशतता पीढ़ी-दर-पीढ़ी लगभग समान बनी रहती है। इसी चीज़ के कारण कुरू जीन जल्दी से समाप्त नहीं हो पाता। इस प्रकार यह एक और उदाहरण मिला जिसमें पता चलता है कि किस प्रकार मनुष्य अपने जीवन चलाने की विधि से अपनी आनुवंशिक संरचना को नियंत्रित करता है। फ़ोरे लोगों का जादू-टोने में विश्वास होने से कुरू जीन समाप्त नहीं हो पाया और इस जीन के कारण कुरू रोग भी समाप्त नहीं हो पाया। इस उदाहरण को ध्यान में रखते हुए वह वक्त आ गया है कि हमें अपनी सामाजिक आदतों पर अधिक विस्तार से ध्यान देना होगा।

8. विभिन्नताओं का नियंत्रण

आनुवंशिकी के विज्ञान से मानव-विज्ञान तथा मानव-जाति में एक क्रांति आ गई है। इसका सीधा अर्थ यह है कि बीसवीं शताब्दी मनुष्य के इतिहास में एक बहुत बड़ा मोड़ पैदा कर रही है। जो बीत चुका, वह, जो होने वाला है उससे, मूलतः बिल्कुल भिन्न है। अब हमें वंशागति की क्रिया के बारे में इतना अधिक ज्ञान है कि हम उसके द्वारा मानव के बाक़ी अस्तित्व के लिए मनुष्य के विकास की दिशा को मोड़ सकते हैं। अभी कुछ ही समय पूर्व तक मनुष्य अनुभव नहीं कर पाया था कि वह यह सब कुछ कर सकता है और अब भी अनेक लोग इस बात को ठीक से समझ नहीं पाते हैं।

हमने पीछे मनुष्य के ऐसे दो उदाहरण देखे जिनमें वह अपने सामाजिक कार्यों के द्वारा अनजाने में ही अपनी विकास-दिशा को प्रभावित कर रहा है। रोमवासी यहूदियों ने केवल अपने ही दायरे में शादी-विवाह करके अपने पड़ौसी इतालवियों से अपने अन्तर बनाए रखे हैं। न्यूगिनी के फ़ोरे लोगों ने जादू-टोनों की प्रथा के द्वारा एक निरन्तर हानि पहुंचाने वाले आनुवंशिक रोग को सुरक्षित बनाए रखा है।

सामाजिक क्रम-विकास और भी कई अन्य तरीक़ों से कार्य कर सकता है। विषुवत् रेखा पर स्थित भाप से भरे भभकते जंगल मलेरियाई मच्छरों के प्रजनन के वास्ते अनुकूल स्थान नहीं हैं। मलेरिया उन जगहों पर नहीं होता जहां तालाबों और नदियों के ऊपर छाया करने वाली वृक्ष-शाखाओं के कारण धूप नीचे तक नहीं पहुंच पाती। लेकिन जब मनुष्य और उसकी खेती वहां पहुंची तब वहां भी चीज़ें शीघ्र ही बदलने लगीं। उसने जंगल साफ़ कर अपने लिए गांव और खेत बनाए। ताल-तलैयों के ऊपर ज़ोर की धूप पहुंची, नतीजा यह हुआ कि मलेरियाई मच्छर पनपा और फैला। इसी तरह हंसिया-कोशिका का रोग भी फैला और बढ़ा क्योंकि हंसिया-कोशिका के जीन से लोगों को मलेरिया के प्रति सुरक्षा मिली।

इस प्रकार अफ्रीका में मलेरिया के फैलने और उसके पीछे-पीछे आने वाले हंसिया-कोशिका रोग के बढ़ने का सारा दोष वास्तव में मनुष्य का ही है। लेकिन अब इस सारी स्थिति में एक दूसरा ही परिवर्तन आ रहा है। आधुनिक दवाओं से मलेरिया रोका जा सकता है और मलेरिया के रुकने पर हंसिया-कोशिका के जीन का महत्व समाप्त हो जाएगा। संयुक्त राज्य अमरीका में (जहां मलेरिया का ज़्यादा

खतरा नहीं है) लगभग इतने ज़्यादा नीग्रो लोगों में हंसिया-कोशिका का जीन नहीं होता जितना उनके अपने अफ्रीकी पूर्वजों में होता था। अगले कुछ वर्षों में जैसे-जैसे मानव अफ्रीका में मलेरिया के ऊपर अपना अधिकाधिक नियंत्रण करता जाएगा, आशा है कि वहाँ हंसिया-कोशिका के होने की बारम्बारता भी उसी तरह कम होती जाएगी।

खेद की बात है कि अन्य आनुवंशिक रोगों के बारे में हम इतनी आशा नहीं कर सकते। जैसे-जैसे चिकित्सा इन रोगों पर काबू पाती जाएगी वैसे-वैसे इनकी आनुवंशिक हानियाँ भी समाप्त होती जाएँगी। उदाहरण के लिए मधुमेह के रोगियों में इन्सुलिन का इन्जेक्शन देकर रोग लगभग पूरी तरह अहानिकर बना दिया गया है। लेकिन ये रोगी अब ज़्यादा समय तक जिएँगे, वे अधिक स्वस्थ होंगे और उनके बच्चे भी अधिक होंगे। इन बच्चों में से कुछ पुनः मधुमेह के रोगी होंगे और उनका भी इन्सुलिन से इलाज होगा और फिर अगली पीढ़ी में इनकी सन्तान भी मधुमेह की रोगी होगी। मतलब यह कि तांता चलता ही रहेगा। कुल मिलाकर मधुमेह का रोग अधिकाधिक फैलता ही जाएगा, भले ही यह बात और है कि यह पहले की तरह इतना ज़्यादा हानिकारक नहीं होगा। अन्य बीमारियों के बारे में भी शायद यही बात हो। बिना महसूस किए ही हम बहुत से रोगों का इलाज कर रहे हो सकते हैं जो किसी समय बस इसलिए बहुत कम थे क्योंकि वे घातक थे। जब वे घातक ही नहीं रहे तब स्वाभाविक ही है कि यदि ये रोग वंशागत हुए तो अधिक फैलते जाएँगे।

आज तक मनुष्य की जो अधिकतर क्रम-विकासीय प्रगति हुई है और उसकी अलग-अलग जातियाँ तथा उपजातियाँ बनी हैं वे सब जलवायु, प्रदेश अथवा उपलब्ध आहार के आधार पर बनी हैं, फिर भी हमेशा ऐसा ही होगा ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए। प्राचीन समय में जातियों के निर्माण का एक बहुत बड़ा कारण भौगोलिक बाधाएँ रही हैं—इनके कारण एक ओर के लोग दूसरी ओर के लोगों से मिल-जुल नहीं पाए। लेकिन अब सहारा रेगिस्तान, हिमालय और आल्प पर्वत बड़ी भौगोलिक बाधाएँ नहीं हैं। यात्रा के उत्तम साधनों, विशेषकर वायुयानों का मतलब है कि लोग एक-दूसरे से ज़्यादा-ज़्यादा घुलेंगे-मिलेंगे। उनके आनुवंशिक अन्तर उत्तरोत्तर कम दिखाई देंगे, मानो धीरे-धीरे मगर निश्चय ही सलवटें दूर होती जा रही हों।

मनुष्य अब तक पूरी तरह जलवायु की कृपा पर निर्भर रहा करता था। मंगोलरूपियों के मामले में तो हम वास्तव में कह ही सकते हैं कि जलवायु ने ही उनके चेहरे को 'ढाला' है। आजकल अधिकतर लोगों के लिए जलवायु एक खीजने परेशानी की ही चीज़ है, कम-से-कम पश्चिमी सभ्यता में तो ऐसा है ही। ठंड से बचने के लिए हमारे पास काफ़ी कपड़े हैं, बारिश और धूप से बचने के लिए हमारे पास घर हैं। जलवायु के लिए हम अभेद्य बनते जा रहे हैं। ठंड के दिनों में किसी व्यापारी को देखिए उसका जीवन वास्तव में जलवाय से बिल्कुल स्वतन्त्र रूप में

चलता जाता जान पड़ता है। वह हल्के मामूली-से कपड़े पहने एक वातानुकूलित कमरे में बैठा काम करता है। जब वह बाहर जाता है तो एक मोटा-सा ओवरकोट पहन लेता है, टैक्सी में क़दम रखता है और फिर एक अन्य वातानुकूलित आफ़िस में पहुँचता है। 'सूक्ष्म जलवायु' (micro-climate) यदि कहीं है तो ऐसे ही व्यक्ति की है, और इसका नियंत्रण कम्पनी के एयरकंडीशनरों के थर्मोस्टैट (thermostat) यानी तापस्थापी से होता है।

जितनी अच्छी तरह मनुष्य ने ठंड पर विजय पाई है लगभग उसी तरह मनुष्य ने गर्मी पर भी विजय पाई है। ऐरिज़ोना के रेगिस्तान रहने के लिए लोकप्रिय होते जा रहे हैं : धूप तो वे देते ही हैं बाक़ी काम मनुष्य स्वयं कर लेता है—वह खाना, पानी और वातानुकूलित घर ले आता है (प्लेट 27 तथा 28)।

आपने शायद निराशावादियों को कहते हुए सुना होगा कि युद्ध मानव के लिए अनिवार्य है—यानी कि बिना युद्ध के आबादी ज़रूरत से ज़्यादा बढ़कर स्वयं खतरनाक साबित हो सकती है। वे लोग यह भी कहते हैं कि मानव के लिए लड़ना-झगड़ना भी स्वाभाविक है तथा जब तक मानव इस ग्रह पर रहेगा युद्ध भी होते ही रहेंगे। यदि यही बात है तब तो हमारा दृष्टिकोण उचित नहीं है। जब तक मानव आमने-सामने भाले, बर्छियों या लाठियों से लड़ता रहा तब तक कुछ आनुवंशिक परिणाम निकला तो अच्छा ही निकला। दुर्बल मारे गए, बलवान जीवित बने रहे और उन्होंने नई पीढ़ियों को जन्म दिया। लेकिन धनुष-बाण के आने, तथा और-तो-और, गोला-बारूद तक के आ जाने से स्थिति बदल गई। मशीन-गन और गोला बारूद हुआ तो एक दुर्बल व्यक्ति भी सैकड़ों हट्टे-कट्टे लोगों को मार सकता है। वास्तव में देखा जाए तो आज के युद्ध में सामने लड़ते हुए सबल लोग मारे जाते हैं और पीछे कस्बों तथा नगरों में उनकी अपेक्षा दुर्बल लोग ज़िन्दा बच रहते हैं। जब बटन दबाकर लड़ाइयाँ लड़ी जाने लगेंगी तब हालत और भी खराब हो जाएगी—उसमें हो सकता है कि सारी मानवता ही नष्ट हो जाए या अगर सारी नष्ट भी न हुई तो कम-से-कम मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर तो पड़ेगा ही।

लेकिन यह तो एक दुखद कल्पना का दृष्टिकोण रहा। परन्तु आज यदि एक ओर मनुष्य के पास अपने साथियों का संहार करने के लिए बेहतर साधन हैं तो दूसरी ओर उसके पास अपने-आपको सुधारने के लिए बिल्कुल नया तरीक़ा भी मौजूद है—उन जीनों के वरण के द्वारा जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझता है। मानव जब स्वयं जान-बूझकर जीनों के वरण की क्रिया करता है तब उसे सुजननिकी (eugenics) कहते हैं। मगर खेद है कि जब लोगों ने पहले-पहल अनुभव किया कि वे इस प्रकार अपने भविष्य को दिशा दे सकते थे तब उन्होंने अपने इस नए-नए खोजे विज्ञान के जरूरत से ज़्यादा दावे भरने शुरू कर दिए। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहना शुरू कर दिया कि सौ सालों के अन्दर-ही-अन्दर सारे अस्पताल खाली हो जाएँगे, पागलखानों

में कोई न होगा, और पृथ्वी के ऊपर से अपराध का सफ़ाया हो जाएगा। उन लोगों के ये दावे सही नहीं थे।

लेकिन उनकी योजना थी क्या ? उनकी कल्पना में उन सारे लोगों को सन्तान प्राप्ति से रोकना था जिनमें आनुवंशिक दोष थे। उदाहरण के लिए अनेक प्रकार का पागलपन वंशागतिशील होता है, और यह सोचा गया कि यदि पागल लोगों के सन्तान नहीं होने दी जाए तो इस प्रकार के पागलपन शीघ्र ही समाज से समाप्त हो जाएँगे। आधुनिक आनुवंशिकीविदों ने सिद्ध कर दिया है कि इस विधि से किसी भी दोष को संसार से पूरी तरह समाप्त कर देना कभी सम्भव न होगा, क्योंकि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति में जिसमें कोई विशिष्ट जीन मौजूद है ज़रूरी नहीं कि उस जीन का उस पर कोई भौतिक प्रभाव पड़ ही रहा हो। उदाहरण के लिए, दीखने वाले हर पाँच सूरज-मुखी (albino) लोगों के प्रति लगभग डेढ़ सौ ऐसे लोग होते हैं जिनमें सूरजमुखी लक्षण का जीन होते हुए भी वे निश्चय ही मीलैनिन का निर्माण कर सकते हैं। फिर भी, उनकी सन्तान में सूरजमुखी बच्चों के पैदा होने की सम्भावना तो है ही। अतः हमने अगर ऐसे लोगों को सन्तान प्राप्त करने से रोका भी तो संसार में सूरजमुखियों की संख्या को आधा करने में ही डेढ़ हज़ार वर्ष लग जाएँगे। PTC न चख सकने वाले लोगों की संख्या को घटाकर दस हज़ार में से एक कर देने के लिए ढाई हज़ार वर्ष लगेंगे और मधुमेह के होने में 99 प्रतिशत की कमी लाने के लिए दो हज़ार वर्ष चाहिए।

निश्चय ही ऐसे किसी दोष को कम करने में तो और भी बहुत ज़्यादा समय लगेगा जो जीवन के काफ़ी बाद के काल में प्रकट होता है। मंगोलिज़्म (Mongolism) नामक रोग वंशागतिशील है—एक प्रकटतः बिल्कुल सामान्य माता के ऐसे कुविकसित बच्चे पैदा हो सकते हैं जिनमें ठीक से मानसिक विकास कभी नहीं होता। लेकिन हैरानी की बात है कि अगर वह माँ ज़्यादा उम्र की नहीं है तो सम्भावना है कि उसके बच्चे अधिक सामान्य होंगे। अतः हो सकता है कि उस माता में इस अपसामान्यता के पता चलने से पहले दो या तीन बच्चे हो चुके हों। ये सामान्य बच्चे भी इस अपसामान्यता के वाहक होंगे—हो सकता है कि उनकी सन्तान अपसामान्य हो। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार किसी अपसामान्यता का नियंत्रण नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए क्योंकि हमें उस दोष का तब तक पता नहीं चलेगा जब तक कि बहुत ज़्यादा समय नहीं बीत जाता।

इतना सब होने पर भी एक बहुत-बहुत बड़ी सुनियोजित व्यवस्था की जाए तो शायद मनुष्य की एक ऐसी प्रजाति का निर्माण किया जा सके जिसमें सभी लोगों में एक समान लक्षण पाया जा सके—जैसे कि ऊँचाई, घुंघराले बाल, काली त्वचा या फिर PTC चख सकने की क्षमता। लेकिन इन सारी बातों को एकसाथ एक ही मानव-प्रजाति में पैदा कर सकना बहुत ही कठिन होगा।

अगर उन सारी विशेषताओं का पूरा समुच्चय लाने की कल्पना की जाए जो सभी लोगों को अच्छी लगती हैं, तब तो यह काम और भी कठिन हो जाएगा। कदाचित् कोई भी दो व्यक्ति इस बात पर सहमत नहीं हो सकते कि एक आदर्श व्यक्ति में कौन-कौन-सी विशिष्टताएँ होनी चाहिए—वह कितना बुद्धिमान हो, कितने ऊँचे क़द का हो, कितना बलवान हो? मान लिया आपको सिर्फ़ एक ऐसा व्यक्ति छांटने को कहा जाए जिसे आप चाहेंगे कि आपका अपना बेटा भी वैसे ही हो। आपके कितने दोस्त अपने-अपने बेटों के लिए उसी व्यक्ति को आदर्श चुनेंगे? मैं समझता हूँ कि थोड़े और बहुत ही थोड़े होंगे।

अतः जानबूझकर सुजननिकी-विधियों के द्वारा मनुष्य के भावी विकास को नियंत्रित करने के लिए हमें दो बातें करनी होंगी : पहली बात यह कि हम सबको एक आदर्श व्यक्ति की कल्पना में एकमत होना पड़ेगा और फिर हमें अपने समाज की इस तरह संचालन-व्यवस्था करनी होगी कि यह आदर्श व्यक्ति अन्ततः उत्पन्न हो सके। निस्संदेह इसका मतलब होगा कि हमें अपने यहाँ शादी-विवाह एवं परिवारों की पद्धति में आमूल परिवर्तन करने होंगे—केवल उन्हीं लोगों को सन्तान प्राप्ति होने दी जाएगी जिनमें सही लक्षण मौजूद हैं, मगर शेष को इन लक्षणों वाले माता-पिता की सन्तान को गोद ले सकने की अनुमति मिल सकेगी।

फ़िलहाल इस प्रकार की कल्पना क़तई सम्भव नहीं। आदर्श मानवों की प्रजाति के निर्माण के लिए मानव-जाति अपनी आज की सम्पूर्ण जीवन-विधि को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए अभी तक तैयार नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि आनुवंशिकी के विज्ञान की हमारी आज की जानकारी पर्याप्त विकसित नहीं है कि हम यह सब पूरा कर पाएँ। दूसरा कारण यह है कि हमें अभी तक पूरा विश्वास नहीं है कि निकलने वाला परिणाम अच्छा ही होगा। यह भी जीवन का एक आनन्द है कि दुनिया के कोई भी दो लोग बिल्कुल एक ही प्रकार के न हों—हम चाहते भी तो नहीं कि अधिकाधिक लोग एक-दूसरे के समान हों?

निश्चित सीधी सुजननिकी-विधियों के द्वारा अपने विकास का नियंत्रण करने की सम्भावना कम होते हुए भी हमें नहीं मालूम है कि अगले सौ वर्षों में हमारा सामाजिक व्यवहार हमारे भावी विकास को परोक्ष रूप में अवश्य प्रभावित करेगा। इस तथ्य को हमारे लिए जान लेना बहुत जरूरी है और साथ ही यह भी जान लेना जरूरी है कि अगर हम अपनी जीवनचर्या में और अधिक परिवर्तन लाएँगे तो उससे क्या परिणाम होगा—इन परिणामों की हमें पूर्वघोषणा मालूम होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, इसमें क़तई संदेह नहीं कि बड़े नगरों में रहने का हमारे स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है—देहात में रहने वालों की अपेक्षा शहर के लोगों में पागलपन, अंतड़ियों के फ़ोड़े, हृदय-रोग और फेफड़ों के कैंसर की दर ज़्यादा होती है। वैज्ञानिकों और समाज-विज्ञानियों का कर्तव्य है कि वे इसके कारणों का पता लगाएँ

ग्रौर इस बढ़ते जाते ग्रस्वास्थ्य को रोकें। ग्रौर जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम भविष्य के बारे में विचार करें ग्रौर उन बातों की पूर्वघोषणा करने का प्रयत्न करें कि ग्रगर ग्रपने रहने का तरीक़ा ग्रौर ज़्यादा बदला तो उससे हमें क्या-क्या हो सकता है। कोई नहीं जानता कि ग्रगर दुनिया में सब तरफ़ बस शहर-ही-शहर हों जिनके रहने वाले भोजन के नाम पर फ़ैक्ट्रियों में गोलियाँ खाकर जीते हैं ग्रौर जो इतने मालदार हैं कि उन्हें ग्रपने लिए पूरे सप्ताह में बस दो घण्टे काम करना ही काफ़ी हो, तो क्या होगा ? फिर भी यह जानकारी ग्रति ग्रावश्यक है, ग्रौर ग्रंतरिक्ष खोज या कपड़े धोने के ज़्यादा ग्रच्छे पाऊडरों के निर्माण से कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण है।

ग्रपने परिवेश को बदल सकने का एक सबसे बड़ा खतरा परमाणु-बमों के विस्फोट से हो सकता है। परमाणु विस्फोट से भयंकर रेडियो-एक्टिव कण निकलकर वातावरण में फैल जाते हैं। ग्रन्ततः ये कण हवा में से धीरे-धीरे नीचे बैठते जाते ग्रौर पृथ्वी पर ग्रा जाते हैं। पृथ्वी पर ग्राकर ये कण हमारे शरीर में प्रविष्ट हो सकते हैं। जब भी ऐसा होता है तो वे कण हमारे शरीर की कोशिकाग्रों में पहुँच सकते हैं जहाँ पर वे जीनों में ग्रवांछनीय परिवर्तन ला देते हैं जिन्हें म्यूटेशन (mutation) कहते हैं। इस प्रकार प्रभावित लोगों की सन्तान सामान्य नहीं होगी। हम जितने भी ज़्यादा परमाणु-बम छोड़ेंगे उतनी ही ज़्यादा रेडियो-एक्टिव धूलि वातावरण में फैलेगी ग्रौर उतना ही ज़्यादा विकृत बच्चों का जन्म होगा। रेडियो-एक्टिव धूलि का सुरक्षा-स्तर नहीं होता—वातावरण में जितनी ज़्यादा धूलि होगी म्यूटेशन हुए जीनों की संख्या में भी उतनी ही ज़्यादा वृद्धि होती जाएगी। मैंने इसी ग्रध्याय के प्रारम्भ में कहा था कि जैसे-जैसे मानव ग्रधिकाधिक यात्रा करता है ग्रौर उसकी प्रजातियों में ग्रधिकाधिक ग्रन्तर्विवाह होते हैं वैसे-वैसे मानव-मानव में पाए जाने वाले ग्रन्तर धीरे-धीरे दूर होते जाएँगे, लेकिन इस सब के बावजूद परमाणु-बमों के विस्फोटों से जो परिणाम निकलेगा वह उल्टा ही होगा। इन विस्फोटों से मानव में पाई जाने वाली विभिन्नताएँ बढ़ेंगी। ग्रन्त में क्या परिणाम होगा, कोई नहीं जानता। लेकिन इतना निश्चित है कि परमाणु-ग्रस्त्रों का परीक्षण ग्रौर इस्तेमाल जितना जल्दी रोका जाए उतना ही ग्रच्छा है।

जब मैं ठहरकर रुकता हूँ ग्रौर रुककर इस ग्रध्याय को दुबारा पढ़ता हूँ तो मुझे लगता है कि ग्राप शायद यह मतलब निकालें कि मनुष्य का भविष्य ग्रन्धकार-मय है। मैंने सामने ग्राने वाले ग्रनेक खतरों के उदाहरण दिए हैं। लेकिन महसूस करने की सबसे बड़ी बात यह है कि हमारा भविष्य ग्रनिवार्यतः ग्रन्धकारमय नहीं है। हमारे पास वह ज्ञान है जिसके द्वारा हम ग्रपना भविष्य बना भी सकते हैं ग्रौर बिगाड़ भी सकते हैं। यदि हम परमाणु-युद्ध के द्वारा ग्रथवा ऐसा समाज बनाकर जिसमें व्यक्ति स्वस्थ मानसिक दशा में जीवित बचा नहीं रह सकता, हम ग्रपने-ग्रापको

नष्ट कर डालें तो इसका दोषी और कोई नहीं हम स्वयं होंगे। इसके विपरीत आज हमें ऐसा सुअवसर प्राप्त है जो पहले कभी नहीं प्राप्त था, जिसके द्वारा हम अपने भविष्य को सुखमय और सफल बना सकते हैं। यदि मनुष्य ने इस अवसर का लाभ उठाने की बुद्धिमानी की तो वह स्वयं बधाई का पात्र होगा—और यह बधाई विशेष-कर उन वैज्ञानिकों को मिलेगी जिन्होंने इस खोज को सम्भव बनाया, और वे मानव-विज्ञानी भी बधाई के कम अधिकारी नहीं होंगे जिन्होंने मानव के अध्ययन को विज्ञान के स्तर पर ला खड़ा किया।

9. आजीविकाएँ

शारीरिक मानव-विज्ञानियों को इतने अधिक अन्य विज्ञानों की कामचलाऊ जानकारी चाहिए कि उन्हें अन्य अधिकतर वैज्ञानिकों की अपेक्षा नियमतः ज़्यादा अर्हताएँ चाहिए। इसका मतलब है कि स्कूल में, विश्वविद्यालय में और फिर उसके बाद अनुसंधान-कार्य करने में बहुत कड़ी मेहनत करनी होगी।

आरम्भ करने के लिए आपको बारहवीं कक्षा तक का विज्ञान पाठ्यक्रम करना होगा जिसमें यदि जीव-विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा भौतिकी विषय आपके पास हों तो अच्छा रहेगा। तदुपरांत किसी विश्वविद्यालय में 3 वर्ष का डिग्री कोर्स कर सकते हैं। अनुसंधान करने से पहले आपको स्नातकोत्तर डिग्री भी लेनी होगी। अनुसंधान का अनुभव होने के बाद आपको किसी विश्वविद्यालय में शिक्षक का स्थान मिल सकता है जिसके साथ-साथ आप अनुसंधान-कार्य को और आगे बढ़ाते रह सकते हैं।

यदि किसी कारण विश्वविद्यालय में आपको मानव-विज्ञान में प्रवेश नहीं मिल पाता तो आप निराश न होइए। आप भौतिक मानव-विज्ञान से सम्बन्धित किसी अन्य विज्ञान जैसे कि आनुवंशिकी, शारीरिकी अथवा शरीर-क्रियाविज्ञान का अध्ययन कर सकते हैं। तब फिर आप इन विषयों में अनुसंधान कर सकते हैं और अनुसंधान के कार्य-क्षेत्र के लिए आप मुख्यतः मनुष्य को चुन सकते हैं—इस प्रकार करना हो सकता है आपको पिछले दरवाज़े से घुसने के समान लगे फिर भी इससे बहुत सहायता मिलेगी।

आपके मन में प्रश्न आ सकता है कि अगर आप भाषण देने तथा अनुसंधान में वास्तव में कुशल नहीं हैं तो भी क्या आप और कुछ कर सकते हैं? हाँ, कर सकते हैं। अगर आप विश्वविद्याल में मानव-विज्ञान पढ़ेंगे तो आपको इस पुस्तक में बताई गई बातों से बहुत-कुछ ज़्यादा पढ़ने को मिलेगा। आप मानव के क्रम-विकास के बारे में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे। आप इस विकास का पुरातत्व के प्रमाण के आधार पर अध्ययन करेंगे: संग्रहालयों का अच्छी तरह चलाना मानव-विज्ञानियों के द्वारा ही ज़्यादा सम्भव है। यदि ऐसा कोई स्थान आपको मिल जाता है तो आपको स्वयं अपनी खोजें करने के लिए बहुत-सा समय और अवसर मिलेगा। भारत में नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय भी एक ऐसा ही स्थान है। इसके अलावा भारत सरकार की ओर से एक बड़ी संस्था 'ऐंथ्रोपोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया' (भारत का मानव-विज्ञान सर्वेक्षण) भी है जहाँ मानव-विज्ञानियों को कार्य करने का अवसर मिल सकता है।

उद्योगों में भी मानव-विज्ञानियों के महत्व को समझा जा रहा है। विश्व-विद्यालय में आप मानवमिति (anthropometry) के बारे में बहुत-कुछ पढ़ेंगे—इस शाखा में शरीर के विभिन्न भागों का मापना और उनका विश्लेषण करना शामिल है। कुछ कम्पनियां सिर के रक्षात्मक टोप का निर्माण करने से पहले उनके साइज़ों तथा उनकी आकृतियों के बारे में मानव-विज्ञानियों से सलाह करती हैं, या इसी तरह किसी औज़ार को हाथ से अच्छी तरह पकड़ा जा सकने के बारे में भी सलाह करती हैं। आशा है कि भविष्य में इस प्रकार की सेवाओं के लिए मानव-विज्ञानियों की मांग बढ़ेगी और हो सकता है कि इस क्षेत्र में काम करने में आपको बहुत आनन्द मिलेगा।

मानव-विज्ञानियों को इतने अधिक अवसर प्राप्त नहीं हैं जितने कि अन्य विज्ञानियों को हैं। लेकिन भविष्य में ये अवसर अवश्य बढ़ेंगे और अगर आपको इस रोचक विषय में सचमुच दिलचस्पी है और आप मेधावी भी हैं तो कोई कारण नहीं कि आपको काम करने के लिए कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई अच्छा स्थान न मिल जाए।

पारिभाषिक शब्दावली

अनुकूलन	adaptation
आदिवासी	aborigines
ऊष्मा	heat
ऐमिनो अम्ल	amino acid
किंकी बाल	kinky hair
कुरू रोग	kuru]
क्रम-विकास	evolution
चयापचय	metabolism
छद्मावरण	camouflage
जल-गर्त	water hole
जीन	gene
जीवाश्म	fossil
तंत्रिका-तंत्र	nervous system
तापरोधी	insulator
तापस्थापी	thermostat
तुषाराघात	frost bite
दृष्टिपटल	retina
धूप ताम्रता	sun burn
परमाणु विस्फोट	atomic explcsion
पराबैंगनी	ultraviolet
पृष्ठ क्षेत्रफल	surface area'
पूर्वहनुता	prognathism
प्रकाश-सेल	photocell
प्रजाति	race
प्रवास	migration
प्रशीतन	refrigeration
प्राकृतिक वरण	natural selection
फीओमीलैनिन	pheomelanin
फ्रिज्ली बाल	frizzly hair]

मधुमेह	diabetes
मानवमिति	anthropometry
मानव-विज्ञान	anthropology
मीलैनिन-कोशिका	melanocyte
रक्त समूह	blood group
रक्त क्षीणता	anaemia
वक्ररेखा	curve
वरण	selection
वरणात्मक लाभ	selective advantage
वर्णक्रम	spectrum
विषम संगत	disharmonic
शिर सूचांक	cephalic index
संक्रमण	infection
संदूषण	contamination
समसंगत	harmonic
सुजननिकी	eugenics
सूरजमुखी व्यक्ति	albino person
सूक्ष्मजलवायु	microclimate
सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व	trace element
स्टीएटोपिजिया	steatopygia
हंसिया कोशिका	sickle cell
हिमनद	glacier
हिमयुग	ice age
हिमलम्ब	icicles
हिमांधता	snow blindness
हीमोग्लोबिन	haemoglobin

मानव एक : रंगरूप अनेक

दुनिया के कोई दो व्यक्ति जब तक कि वे एक ही अण्डे से बने समान जुड़वां भाई या बहनें न हों, बिल्कुल एक से दिखाई नहीं देते। फिर भी किस एक ही प्रजाति के सभी सदस्यों में कुछ परस्पर समानताएँ होती ही हैं—उदाहरण के लिए आस्ट्रेलियाई आदिवासी अथवा नीग्रो में प्रत्येक अन्य आस्ट्रेलियाई आदिवासी अथवा नीग्रो से कुछ न कुछ समानता होती है। लेकिन ये दोनों प्रजातियाँ एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। यही बात दुनिया की हर आबादी के साथ है। इन भिन्नताओं तथा समानताओं का कारण क्या है ? प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं सब मूलभूत प्रश्नों पर आधुनिकतम वैज्ञानिक विधियों से विवेचन किया गया है।

एक सबसे स्पष्ट विभिन्नता खाल के रंग की है। लेखक ने इन भिन्न रंगों के बनने का कारण, उनके मापने का तरीका और विभिन्न प्रजातियों को इनसे होने वाले लाभ का स्पष्टीकरण किया है। उसने दर्शाया है कि सारे संसार में जलवायु में भिन्नता के प्रति मानव-शरीर में किस प्रकार अनुकूलन हुआ है। पुस्तक में उन अन्तरों का भी उल्लेख है जो हमें बाहर से आँख द्वारा नहीं दिखाई देते—उदाहरण के लिए रक्त कोशिकाओं में पाए जाने वाले विभेद जिनसे शरीर में इतने ज्यादा परिवर्तन आ सकते हैं कि वे मौत और जिंदगी का कारण बन जाए। सबसे रोचक बातें तो ये हैं कि आज की अति भिन्न प्रजातियों का निर्माण करने वाले परिवर्तन अब भी जारी हैं। इन परिवर्तनों की क्रिया विधि की जो जानकारी आज मनुष्य के हाथ लगी है उससे आज मानव-इतिहास में यह सबसे पहली बार सम्भाव्य हुआ है कि मानव अपने भावी विकास—शरीर एवं मानसिक—दोनों ही को अपनी इच्छानुसार दिशा देने का निर्णय कर सकता है।

समस्त पुस्तक में संकेत किया गया है कि मानव-विज्ञान और जीव विज्ञान की शाखाएँ संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी—स्वयं मानव की अधिकाधिक जानकारी प्रदान करने में किस प्रकार योगदान दे रही हैं।

कैपीटल बुक हाउस

26-यू० बी०, जवाहर नगर, दिल्ली-110007